दीपमाला और भगवान महावीर

ज्ञान मुनि

दीपमाला

— और —

भगवान महावीर

—संयोजक—

जैनधर्मदिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर, श्री वर्धमान-
स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के प्रधानाचार्य
पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज
के सुशिष्य
श्री ज्ञानमुनि जी

प्रकाशक—
श्री जैन शास्त्रमाला कार्यालय
जैन स्थानक, लुधियाना

प्राप्ति-स्थान—
श्री जैन शस्त्रमाला कार्यालय
जैन स्थानक, लुधियाना

प्रथम-प्रवेश
सम्वत् २०१५
मूल्य छः आना

मुद्रक—
श्री दिलबाग राय प्रो० बाग इलैक्ट्रिक प्रैस
गली लालू मल, लुधियाना

किस को ?

जिन की आध्यात्मिक साधना,
तथा आदर्श ज्ञान-आराधना,
के अनुपम प्रकाश को पाकर,
मैं अपनी जीवन-यात्रा में,
चलता चला आ रहा हूं ॥
उन परम श्रद्धेय आचार्य--सम्राट्
पूज्य गुरुदेव के चरण-कमलों में

स विनय
स भक्ति
स मर्पित

ज्ञान मुनि

दीपमाला पर्व क्या है ?
क्या सिखाता है हमें ?
किस तरह इस को मनाएँ ?
यह समझना है हमें ॥

इस पुस्तिका में आप को,
यह सब बताया जायगा ।
वीर का उपदेश---अमृत,
भी पिलाया जायगा ॥

अपनी बात

कार्तिक अमावस्या की रात्रि भगवान् महावीर के निर्वाण की रात्रि है, इस रात्रि को सत्य अहिंसा के अमर दूत भगवान् महावीर ने जन्म-मरण की परम्परा का आत्यन्तिक क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया था। इस के अतिरिक्त इसी रात्रि को भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य श्री गौतम स्वामी ने केवल-ज्ञान की महाज्योति को उपलब्ध किया था। इस तरह इस रात्रि को दो महान् मांगलिक कार्य सम्पन्न हुए थे। इन्हीं दोनों ऐतिहासिक तथ्यों का प्रतीक तथा परिचायक दीपमाला पर्व है। दीपमाला पर्व के द्वारा भगवान महावीर तथा भगवान् गौतम इन दोनों महापुरुषों की पुण्य स्मृति को दोहराया जाता है।

दीपमाला के मूलभूत इन तथ्यों को बहुत कम लोग जानते हैं। जैनेतर लोगों की तो बात ही दूसरी है, जैन लोग भी इस जानकारी से प्रायः वञ्चित ही देखे जाते हैं। यही कारण है कि जब दीपमाला पर्व आता है तो प्रायः लोग पूछते हैं और जिज्ञासाबुद्धि से वे यह पृच्छा किया करते हैं कि जैन दृष्टि से दीपमाला पर्व क्यों मनाया जाता है ? इस पर्व के पीछे कौन-सी भावना काम कर रही है? इस का ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक क्या महत्त्व है ? इसके अतिरिक्त यह भी पूछा जाता है कि इस पर्व को मनाने का वास्तविक ढंग क्या है ? वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय जीवन से इस पर्व का क्या सम्बन्ध है ? मानव-जगत की सुखशान्ति के लिए यह पर्व क्या

साधन-सामग्री प्रस्तुत करता है ? इस तरह के अन्य भी अनेकों प्रश्न प्रायः प्रति-वर्ष लोगों द्वारा किए जाते हैं।

दीपमाला के सम्बन्ध में उपरोक्त प्रश्न सुनकर मेरे मानस में कई बार यह विचार उत्पन्न हुआ था कि एक ऐसी छोटी सी पुस्तक लिखी जाए, जिस में इन सभी प्रश्नों का समाधान हो और जिस में दीपमाला महापर्व के सम्बन्ध में सामाजिक, राष्ट्रिय तथा आध्यात्मिक सभी दृष्टियों को लेकर गम्भीर ऊहापोह किया गया हो। हर्ष की बात है कि मेरी यह चिरन्तन कामना जैनधर्म-दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर, आचार्य-सम्राट् परम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के पावन अनुग्रह से आज परिपूर्ण हो रही है। "दीपमाला और भगवान महावीर" नाम की प्रस्तुत पुस्तिका मेरे उसी चिन्तन का एक साधारण सा मूर्तरूप है। इस पुस्तिका द्वारा मैं अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में कहां तक सफल हो पाया हूं ? इस का उत्तर हमारे सहृदय पाठक देंगे। मैं तो इतना ही निवेदन किए देता हूँ कि दीपमाला को लेकर जो अनेक-विध प्रश्न किए जाते हैं, प्रायः उन सब को इसमें समाहित करने का भरसक यत्न किया गया है। तथापि इसमें यदि कोई न्यूनता रह गई हो तो सूचना मिलने पर पुस्तिका के दूसरे संस्करण में उसे दूर करने का यत्न किया जायगा।

इस पुस्तिका में दो निबन्धों का संग्रह है। दोनों में विभिन्न दृष्टियों से दीपमाला पर्व की महत्ता एवं उपादेयता पर प्रकाश डालने का यत्न किया गया है।

"दीपमाला और जैन धर्म" यह पहला निबन्ध है। सर्व-प्रथम इस में जैन दृष्टिकोण से दीपमाला के सम्बन्ध में विचार किया गया है। इसके अनन्तर—दीपमाला के सम्बन्ध में जैनेतर

लोगों की जो मान्यता है, उस पर आलोचनात्मक ऊहापोह है। अन्तिम शताब्दियों में हुए भारत के कुछ ऐतिहासिक तथा धार्मिक व्यक्तियों का दीपमाला के साथ जो सम्बन्ध जुड़ गया है, संक्षेप में उस का परिचय है। दीपमाला के दिनों जो जूआ खेला जाता है, और आतिशबाज़ी जलाई जाती है, उसके दुष्परिणामों का विवेचन किया गया है। आज की दीपमाला और दीपमाला की वास्तविकता बता कर अन्त में दीपमाला की राष्ट्रियता पर भी कुछ विचार प्रस्तुत किए हैं।

"वीर-निर्वाण महापर्व (दीपमाला)" यह दूसरा निबन्ध है प्रस्तुत पुस्तिका का। मैं दीपमाला को वीर-निर्वाण महापर्व के नाम से व्यवहृत करता हूँ। मेरी दृष्टि में दीपमाला का मूल नाम "वीर निर्वाण महापर्व" है। काल की अनेकानेक घाटियां पार करता हुआ यह नाम अपना मूल रूप खो बैठा है और दीपमाला के रूप में हमारे सामने आगया है। संभव है, समय का चक्र फिर बदल जाए और पर्व अपने मूल स्वरूप को पुनः प्राप्त कर ले।

इस दूसरे निबन्ध में मुख्यतया भगवान् महावीर के जीवन का संक्षेप में परिचय कराने के साथ-साथ उनके उपदेशामृत के कण एकत्रित करने का यत्न हुआ है। भगवान महावीर के प्रवचन-सागर में से कुछ अमृत कण चुन कर पाठकों की सेवा में अर्पित किये गए हैं। अन्त में भगवान महावीर के सिद्धान्तों का संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। यही इस पुस्तिका का सामान्य सा परिचय है।

मैं कोई लेखक नहीं हूं। लेखक का स्थान बहुत ऊंचा है। मैं अभी उस से कोसों दूर हूँ और भारतीय दर्शन के महासागर

का किनारा भी मैंने नहीं देखा, यह भी मैं समझता हूँ, तथापि मैं जो कुछ कर पाया हूँ, यह सब मेरे पूज्य गुरुदेव आचार्य-सम्राट् श्री की चरण-सेवा का ही फल है। इन चरणों में बैठ कर दीपमाला के सम्बन्ध से मैंने जो कुछ सीखा है, दीपमाला के सम्बन्ध में विद्वानों के लिखे लेखों से जो कुछ समझा है उसी को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने का मैंने साधारण सा प्रयास किया है। आशा है कि भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से इस पुस्तिका में जो दोष दृष्टिगोचर होंगे, मेरे सहृदय पाठक उन के लिए मुझे क्षमा करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तिका के सम्पादन तथा संशोधन में मेरे ज्येष्ठ गुरु भ्राता श्रद्धेय पण्डित श्री हेमचन्द्र जी महाराज का पर्याप्त सहयोग प्राप्त रहा है, तथा मेरे महामान्य योगनिष्ठ तपस्वी पण्डित श्री फूल चन्द्र जी महाराज "श्रमण" का परामर्श भी मेरे लिए मार्गदर्शक रहा है। इसके लिए मैं इन दोनों पूज्य मुनिराजों का हृदय से आभारी हूं।

जैन गुरुकुल ब्यावर के भूतपूर्व प्रधान धर्माध्यापक पंडित श्री शोभा चन्द्र जी भारिल्ल का सान्निध्य पाकर प्रस्तुत पुस्तिका भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से अवश्य पल्लवित एवं पुष्पित हुई है, इस सत्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। पण्डित जी का यह सान्निध्य मेरे लिए चिर-स्मरणीय रहेगा।

जैन स्थानक लुधियाना
२०१५, कार्तिक कृष्णा १५

—ज्ञान मुनि

धन्यवाद

"दीपमाला और भगवान महावीर" इस पुस्तिका का प्रकाशन जिन दानी महानुभावों द्वारा कराया जा रहा है, उनके शुभ नाम निम्नोक्त हैं—

(१) सेठ अमर नाथ जी जैन जालन्धर वाले,
प्रो० रामा जैन हौज़री माधोपुरी,
लुधियाना

(२) श्री मुन्शी राम जी जैन
प्रो० चतरुमल मुन्शी राम जी जैन
लोयर बाजार, शिमला

(३) श्री राजेन्द्र कुमार जी
प्रो० अमी चन्द भोलानाथ जी
लोहे वाले, जालन्धर शहर

(४) श्री बनारसी दास खरायती राम जैन
स्यालकोट वाले, लुधियाना

(५) श्री हरबन्स लाल जी जैन
प्रो० हरबन्स लाल ओमप्रकाश जैन
बाज़ार सर्राफां, लुधियाना

(६) प्रेम इण्डस्ट्रीज़
प्रो० श्री कस्तूरी लाल त्रिसेम लाल जैन
चावल बाजार, लुधियाना

(७) श्री शामलाल जी अग्रवाल
प्रो० श्री शामलाल राम नाथ जी अग्रवाल
जनरलमर्चेंट, खन्ना (लुधियाना)

(८) पण्डित जगन्नाथ जी
प्रो० पण्डित श्री रामशरण दास नौहरियामल जी
फगवाड़ा मण्डी

मैं इन दानी सज्जनों का हृदय से धन्यवाद करता हूं और आशा करता हूं कि ये दानी महानुभाव भविष्य में भी इसी भाँति लोकसेवा के मार्ग पर चलने का यत्न करते रहेंगे, तथा साहित्य--सेवा के इस मंगलमय सत्कार्य में अपने धन का सदुपयोग करने में सदा प्रयत्नशील रहकर अपने भविष्य को उज्ज्वल, समुज्ज्वल अथच अत्युज्ज्वल बनाने का सत्प्रयास करते रहेंगे।

प्रार्थी—
मन्त्री—श्री जैन शास्त्रमाला कार्यालय
जैन स्थानक, लुधियाना

❀ सन्मति युग निर्माता ❀

ध्वनि—जन मन गण......

शिवपुर–पथ–परिचायक जय हे, सन्मति युग–निर्माता,
गंगा कलकल स्वर में गाती, तव गुण-गौरव गाथा,
सुर-नर-किन्नर तव पद युग में, नित नत करते माथा,
सब तेरे गुण गाते, सादर सीस झुकाते.
हे सद्बुद्धि-प्रदाता !
दुःख-हारक सुखदायक जय हे, सन्मति युग--निर्माता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे !

मंगल--कारक दया–प्रचारक, खग पशु नर उपकारी,
भवि-जन-तारक कर्म-विदारक, सब जग तव आभारी।
जब तक रवि शशी तारे, तब तक गीत तुम्हारे
विश्व रहेगा गाता।
चिर सुख शान्ति विधायक जय हे, सन्मति युग-निर्माता।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे !

भ्रातृभावना भुला परस्पर लड़ते हैं जो प्राणी ।
उन के उर में प्रेम बसाती, तेरी मीठी वाणी ।
सब में करुणा जागे, जग से हिंसा भागे,
पावें सब सुखसाता।
हे दुर्जय, दुःखत्रायक जय हे, सन्मति युग--निर्माता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे !

वीर प्रभु की अमर कहानी

ध्वनि—सुनो-सुनो अ दुनिया वालो !.........

सुनो-सुनो अ दुनिया वालो ! वीर-प्रभु की अमर कहानी,
देश धर्म पर अर्पण करदी थी जिस ने ज़िन्दगानी।
चेत शुद तेरस को भगवन कुण्डलपुर में जन्म लिया,
राजा सिद्धार्थ के घर में इक रत्न अमोलक पैदा हुआ।
माता त्रिशला की कुक्षि से चौवीसवां अवतार हुआ,
मगध देश में सारे मानों धर्म का सूर्य उदय हुआ।
देव लोक से चौंसठ इन्द्र आए महोत्सव करने को,
सुरदुन्दुभि मन-मोहन वाली बाजे दिल खुश करने को।
नरनारी मिल मंगल गाया, रोग शोक सब हरने को,
जन्म महोत्सव किया प्रभु का, धर्म के खीसे भरने को।
चारों तर्फ जिस वक्त देश में घटा पाप की छाई थी,
दया रूपी चिड़िया की गरदन पाप ने आन दबाई थी।
यज्ञ हवन में जीवों की जब जाती जान मुकाई थी,
उसी वक्त अवतार लिया जब मच रही हाल दुहाई थी।
अठाईस वर्ष तक घर में रह कर मात-पिता की सेवा की,
आज्ञा–पालन हरदम करते सुख–दुख की पर्वाह न की।
मात-पिता के मर जाने पर जग तारण की खुशी चढ़ी,
वर्षीदान दान किया निज कर से आखिर प्रभु ने दीक्षा ली।

बारह वर्ष पंच माह दिन पन्द्रह रहे प्रभु छद्मस्थ पने,
लाखों कष्ट हज़ारों आफत सहे आपने रात दिने।
देश-देश में विचर-विचर कर तार दिए नर-नार घने,
सत्य—उपदेश प्रभु का सुन कर तर गए लाखों अने गिने।
कष्ट पे कष्ट सहे सिर ऊपर ज़िक्र नहीं है करने का,
किसी ने ठोके कान में कीले, किसी ने पत्थर बरसाया।
किसी ने खीर धरी पांव पर, किसी ने कपटी बतलाया,
शान्तमयी प्रभु ऐसे देखे घबराए नहीं आप ज़रा।
चण्ड-कोशिया नाग ने जिसदम डंग चलाया था आ कर,
मस्त रहे प्रभु ध्यान में अपने क्रोध किया नहीं रत्ती भर।
शरणा दे नवकार मन्त्र का तार दिया उस को आखिर,
ऐसे ज्ञानी महापुरुष की महिमा गाते हैं घर-घर।
उमर ४२ साल आपने रूहानी पद पाया है,
केवल ज्ञान और केवल दर्शन पाकर कर्म खपाया है।
११ गणधर शिष्य आप के इन्हें भी पार लगाया है,
गौतम और सुधर्मा आदिक सब को मोक्ष पहुँचाया है।
उमर हुई जब साल बहत्तर, आया था तब अन्त समे,
कातक अमावस पावापुरी में खुशी-खुशी निर्वाण हुए।
रत्नों की वर्षा तब होई जगमग-जगमग करने लगे,
शाद उसी दिन से दीवाली भारत वाले करने लगे।

दीपमाला वीर के,
निर्वाण की है सूचिका ।
वीर के पथ पर बढ़ो,
इस सत्य को संदेशिका ॥

कैवल्य गौतम देव का,
भी याद यह दिलवा रही ।
श्री वीर, गौतम के पगों में,
भक्ति--पुष्प चढ़ा रही ॥

दीपमाला और जैन-धर्म

जैनत्व की दृष्टि से दीपमाला एक लोकोत्तर पर्व है। जैन-दर्शन की मान्यता के अनुसार सांसारिक आमोद-प्रमोद के साथ इस पर्व का कोई सम्बन्ध नहीं है। महापर्व संवत्सरी की भाँत यह पर्व भी मानव को प्रति--वर्ष आध्यात्मिकता तथा सच्चरित्रता का पावन एवं मधुर संदेश देने आता है। अज्ञानान्धकार से निकाल कर आध्यात्मिक आलोक से मानव के आत्ममन्दिर को आलोकित कर देना ही इसका अपना स्वरूप होता है। काम, क्रोध, मद, मोह, माया आदि का कूड़ा-करकट जो आत्म-भवन में बिखरा पड़ा है, दीपमालापर्व उस का मृदुता, सरलता आदि के झाड़ू से परिमार्जन करता है। मानव--हृदय में जल रहे सत्य-अहिंसा के आदर्श दीपकों को सतत सजग रखने की मधुर प्रेरणा देकर मानव को मानवता का अनुपम पाठ पढ़ाता है।

दीपमाला क्यों—

जैनजगत में दीपमाला एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक पर्व माना गया है। जैन लोग बड़ी श्रद्धा तथा आस्था के साथ इस पर्व को मनाते हैं। इस के उपलक्ष्य में धर्म-प्रेमी लोग अधिकाधिक धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, जप करते हैं, शास्त्र--स्वाध्याय करते हुये ज्ञान-ध्यान द्वारा अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने का प्रयास करते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि जैन समाज में दीपमाला के सम्बन्ध में इतना आदर क्यों पाया जाता है? क्या कारण है कि दीपमाला को एक पवित्र और आध्यात्मिक पर्व समझा गया

है ? आज इसी के सम्बन्ध में कुछ बातें आप के सन्मुख रखी जाएंगी ।

भगवान महावीर और दपमाला—

कल्पसूत्र की मान्यता है कि भगवान महावीर का अंतिम चातुर्मास भूपति हस्तिपाल की विशाल नगरी पावापुरी में हुआ था। चातुर्मास के १०५ दिन व्यतीत हो चुके थे। कार्तिकमास की अमावस्या की रात्रि थी। उस समय पोषध--शाला में नव मल्लकी जाति के काशी देश के राजा, तथा नव लेच्छकी जाति के कोशल देश के राजा, इस प्रकार १८ देशों के राजा-महाराजा भगवान महावीर की सेवा में पौषध* व्रत धारण करके आध्यात्मिकता का लाभ ले रहे थे। भगवान सत्य-अहिंसा के पावन अमृत से उपस्थित राजा-लोगों के हृदय--पौधों को सींच रहे थे। आत्म-शुद्धि तथा आत्म-कल्याण का आदर्श उन्हें समझा रहे थे। एक ओर भगवान का अनन्त ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र जन्य भाव-उद्योत (भा-मण्डल) अपनी छटा दिखा रहा था, दूसरी ओर भगवान का ज्ञानालोक साधकों के आत्म-मन्दिर में ज्ञान के दीपक जला रहा था। उस समय का वातावरण कितना

---

*अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व--तिथियों में किया जाने वाला जैन गृहस्थ का एक व्रत-विशेष पोषध होता है। इसमें दिन-रात के लिए भोजन का त्याग करना होता है, शारीरिक विभूषा तथा आभूषण आदि सभी साधनों को छोड़ना पड़ता है, ब्रह्मचर्य अपनाना होता है, आत्म-चिन्तन के अतिरिक्त कोई भी सांसारिक चिन्तन इस में नहीं किया जाता तथा इसमें प्रायः एक साधु जैसी अवस्था होती है।

सात्त्विक और आध्यात्मिक रहा होगा ? यह साक्षात्-द्रष्टा और केवल-ज्ञानी के अतिरिक्त कौन कह सकता है ?

सिद्धांत है कि जो बना है, उसे नष्ट होना है, जिसका उदय होता है वह अस्त होता है, जिसने जन्म लिया है उसे एक दिन मृत्यु की गोद में सो जाना है। समय के इस परिवर्तन का प्रभाव राजा, रंक, ज्ञानी, अज्ञानी, योगी, भोगी, दुरात्मा, महात्मा, संसार के साधारण पुरुष तथा संसार के महापुरुष सभी प्राणियों पर होता है। कोई भी संसारी जीव अपने को इसके प्रभाव से नहीं बचा सका है, और तो और, स्वयं भगवान महावीर भी इसके प्रभाव से न बच सके। कार्तिकी अमावस्या की काली रात्रि में भगवान निर्वाण को प्राप्त हो गये। महावीर इस पार्थिव शरीर को छोड़ कर मुक्ति में जा विराजे, जन्म-मरण के दुःखों से सदा के लिये मुक्त हो गये।

सूर्यास्त हो जाने पर जैसे जगतीतल पर अन्धकार अपना शासन जमा लेता है, वैसे ही सत्य-अहिंसा के दिवाकर भगवान महावीर के निर्वाण को प्राप्त हो जाने पर उन का भाव--उद्योत (भामंडल*) समाप्त हो गया, आत्म-ज्योति की किरणें आत्मा के साथ ही मोक्ष-धाम में चली गईं। फलतः भामण्डल के अभाव के कारण द्रव्य-अन्धकार बढ़ने लगा। इस अन्धकार को दूर करने के लिये भगवान के समवसरण में उपस्थित राजा-

---

*आध्यात्मिकता की चोटियों के शिखर पर विराजमान महापुरुष के सिर के पीछे एक गोलाकार प्रकाशपुंज अवस्थित होता है, जो उन के अध्यात्म प्रकाश का एक पुण्य प्रतीक समझा गया है। वह भामंडल कहलाता है।

लोगों ने द्रव्य–उद्योत किया अर्थात् रत्नों का प्रकाश किया। भाव-उद्योत की पुण्य स्मृति में द्रव्य-उद्योत की प्रतिष्ठा कर दी गई। फिर क्या था ? चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश जगमगा उठा। इस तरह पौषधशाला के अन्धकार को दूर कर दिया गया।

भगवान महावीर के भाव--उद्योत की पुण्य स्मृति में किया गया द्रव्य-उद्योत (रत्नों का प्रकाश) पावापुरी की पौषधशाला तक ही सीमित नहीं रहा, कालान्तर में वह पावापुरी से बाहर सभी प्रदेशों में चालू हो गया। सभी स्थानों में कार्तिकी अमावस्या की रात्रि को रत्नों तथा दीपकों का प्रकाश करके भगवान महावीर के निर्वाण-दिवस की पुण्य स्मृति को ताज़ा किया जाने लगा। इस द्रव्य–उद्योत के माध्यम से भाव-उद्योत (ज्ञानालोक) को सम्प्राप्त करने की प्रेरणा भी प्राप्त की जाने लगी। आगे चलकर यही पुण्य स्मृति एक पर्व के रूप में परिवर्तित हो गई। जैन नरेशों के प्रभावाधिक्य से तथा भगवान महावीर के अपने महान् आध्यात्मिक व्यक्तित्व के कारण धीरे-धीरे यह पर्व सारे भारत वर्ष में मनाया जाने लगा, कार्त्तिक की अमावस्या को सर्वत्र दीपमाला प्रचलित हो गई। दीपमाला करके भगवान महावीर के लोकोपकारों को दोहराना आरंभ कर दिया तथा सत्य-अहिंसा के अनुपम सिद्धांतों से भाव-उद्योत प्राप्त करने का तथ्य भी लोगों को समझाया जाने लगा*। २४०० वर्षों के पहले की दीपमाला

---

*कुछ विद्वानों का ऐसा कहना है कि कल्पसूत्र में "दव्वुज्जोअं करिस्सामो" ऐसा पाठ मिलता है। इस का अर्थ है— द्रव्य-उद्योत करेंगे। यहां भविष्यत् कालीन क्रिया के प्रयोग से यह स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि प्रभु वीर की निर्वाण-रात्रि को राजा लोगों ने रत्नों या दीपकों का प्रकाश नहीं किया प्रत्युत उन्होंने उस

आज भी भारत वर्ष में बड़े ही समारोह के साथ मनाई जाती है। आज भी दीपमाला के माध्यम से भगवान* महावीर के

रात्रि में यह प्रण किया था कि भविष्य में हम कार्तिकी अमावस्या की रात्रि को द्रव्य--प्रकाश किया करेंगे और दीप जला कर भगवान महावीर का पुण्य निर्वाण-दिवस मनाया करेंगे।

इसके अतिरिक्त उन का यह भी कहना है कि यह सत्य है कि भगवान महावीर की निर्वाण-रात्रि को भगवान के भा-मण्डल के अस्त हो जाने पर सर्वत्र अन्धकार हो गया था, किन्तु भगवान के निर्वाणमहोत्सव में सम्मिलित होने के लिये उपस्थित हुए देव, देवी, इन्द्र और इन्द्राणी आदि के शरीरगत दिव्य प्रकाश से पौषधशाला का वह अन्धकार दूर हो गया था। देवों के दिव्य शरीरों की दिव्य ज्योति से पौषधशाला का कण-कण ज्योतित हो उठा था। देवों का वही दैविक द्रव्य-प्रकाश भगवान महावीर के भाव-उद्योत (आत्म-तेज) का पुण्य प्रतीक समझा जाने लगा था। इसी के आधार पर राजा लोगों ने भविष्य में द्रव्य-उद्योत करने का निश्चय किया था।

*प्रश्न हो सकता है कि भगवान महावीर से पहले जो २३ तीर्थंकर हुए हैं, उनका निर्वाण-दिवस दीपमाला के रूप में परिवर्तित क्यों नहीं हुआ? भगवान महावीर के निर्वाण-दिवस को ही दीपमाला के रूप में मनाने का क्या विशेष कारण है?

इस प्रश्न का उत्तर इतना ही है कि भगवान महावीर का निर्वाण बस्ती में हुआ था और धर्म-देशना देते हुए, किन्तु जो शेष २३ तीर्थंकर हुए हैं, उनका निर्वाण वनों में या पर्वतों में हुआ था। किसी नगर या बस्ती में उनका निर्वाण नहीं हो पाया, और नाहीं प्रवचन करते हुए। फलतः निर्वाण के समय उनके

सत्य-अहिंसा का परम सत्य जनमानस तक पहुँचाया जाता है। भगवान महावीर के साथ दीपमाला का सीधा सम्बन्ध होने से यह पर्व वीरनिर्वाण महापर्व के नाम से भी प्रसिद्ध हो गया है।

भगवान गौतम और दीपमाला—

जैनों के लिये दीपमाला के महत्त्व तथा सम्मान की एक और भी बात है। इतिहास बताता है कि भगवान महावीर के चौदह हज़ार साधु थे। इन साधुओं में प्रमुख स्थान महामहिम तपोमूर्ति पूज्य श्री इन्द्रभूति गौतम जी महाराज का था। श्री इन्द्रभूति जी महाराज भगवान के ११ गणधरों में से पहले गणधर थे और आज ये जैन संसार में श्री गौतम स्वामी के नाम से विख्यात हैं। श्री गौतम जी महाराज भगवान महावीर के अनन्य श्रद्धालु तथा उपासक मुनिराज थे। इन्हें प्रभु के चरणों से महान प्रेम था। श्री गौतम स्वामी का यह प्रेम इतना विलक्षण था कि कुछ कहते नहीं बनता। प्रभु का वियोग उन्हें सर्वथा असह्य था। प्रभु के वियोग की बात वे सुनना

पास राजा-महाराजा उपस्थित नहीं थे। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि यदि २३ तीर्थंकरों में से किसी तीर्थंकर भगवान के निर्वाण के समय राजा–महाराजा उपस्थित भी हों तो उनके मस्तिष्क में यह विचार ही पैदा नहीं हुआ होगा कि हम इस तीर्थंकर के निर्वाण-दिवस के उपलक्ष्य में भविष्य में दीपोत्सव किया करेंगे। भगवान महावीर के निर्वाण-समय में उपस्थित राजा-लोगों ने जैसे द्रव्य–उद्योत की बात सोची थी वैसे उन्होंने नहीं सोची होगी। फलतः फिर अन्य तीर्थंकरों के निर्वाण--दिवस को लेकर दीपमाला मनाने का प्रश्न ही नहीं रहता।

भी नहीं चाहते थे। प्रेम धीरे-धीरे मोह का स्थान प्राप्त कर चुका था। यही कारण था कि श्री गौतम प्रभु का पिता के तुल्य समझते थे। पुत्र का पिता से जैसे स्वाभाविक स्नेह होता है, वैसी ही दशा श्री गौतम स्वामी की भगवान महावीर के प्रति चल रही थी।

यह आपको ऊपर बताया जा चुका है कि कार्तिकी अमावस्या की रात्रि को भगवान महावीर का निर्वाण हो गया, इस रात्रि को भगवान जन्म-मरण के बन्धनों को तोड़ कर मुक्ति में पधार गये थे। *जब प्रभु महावीर का निर्वाण हुआ था, उस समय भगवान गौतम भी उनके पास बैठे उनके पावन मुख से निकले "समयं गोयम ! मा पमायए" जैसे पावन और मधुर वचनों का श्रवण कर रहे थे। जब श्री गौतम ने ज्ञान की प्रकाश-दात्री महाज्योति प्रभु वीर को अपने से विलग होते देखा तो वे सन्न से रह गए, ज़मीन उनके पांव तले से खिसक गई, उनकी अन्तरात्मा में भूचाल सा आ गया, तथा आंखों के आगे अन्धेरा छा

---

*कल्पसूत्र की टीका का कहना कि भगवान महावीर ने अपने जीवन के संध्याकाल में अपने प्रधान शिष्य श्री गौतम स्वामी को एक ग्राम में देवशर्मा नामक ब्राह्मण के पास भेजा था, ब्राह्मण को सत्य-अहिंसा का सत्य समझाने के लिये मुनिवर गौतम को आदेश दिया गया था। भगवान के आदेशानुसार श्री गौतम उस ब्राह्मण को अध्यात्मवाद का पाठ पढ़ाकर वापिस आरहे थे या वहीं थे तो उन्होंने अकस्मात् भगवान महावीर के निर्वाण को प्राप्त हो जाने की बात सुनी। निर्वाण-वृत्तांत सुनते ही मुनिराज गौतम अत्यधिक व्यथित एवं पीड़ित हुए आदि आदि।

गया, वे वज्राहत की भान्ति दुःखसागर में डूब गए। श्री गौतम जी महाराज को मार्मिक वेदना हुई। वे पितृवियोगजन्य दुःख से पीड़ित हुए बालक की भाँति विलाप करते हुए रुदन करने लगे। अन्त में वे सम्भले। वीतरागता के आदर्श ने उनका मार्गदर्शन किया। "संसार में न मैं किसी का हूँ और न कोई मेरा है, अज्ञानी जीव व्यर्थ ही मोह की दलदल में फंसा रहता है।" का परम सत्य श्री गौतम जी महाराज के सामने साकार होकर खड़ा हो गया। उनकी अन्तर्वीणा झंकृत हो उठी—

दुनिया के बाज़ार में, चलकर आया एक।
मिले अनेकों बीच में, अन्त एक का एक॥

इस सात्त्विक तथा धार्मिक विचारणा की पराकाष्ठा के सुदर्शन चक्र ने मोह* के कर्म-सेनापति को सदा के लिये शान्त कर दिया। सेनापति मोह के गिरते ही उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय नामक अन्य कर्म सैनिक भी भाग उठे। इन कर्मशत्रुयों के परास्त होते ही श्री गौतम स्वामी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। श्री गौतम जी महाराज की अन्तरात्मा केवल—ज्ञान के आलोक से जगमगा उठी।

---

*घातिक और अघातिक दो तरह के कर्म होते हैं। ज्ञान, दर्शन आदि आत्म-गुणों का जो ह्रास करता है, वह घातिक और जो आत्मा के इन स्वाभाविक गुणों का नाश नहीं करता वह अघातिक कर्म होता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिक कर्म हैं। वेदनीय, आयु नाम और गोत्र इन कर्मों की अघातिक संज्ञा है। केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिये घातिक कर्मों का क्षय करना होता है। ज्ञानवरणीय (ज्ञान का आच्छादन करने वाला), दर्शनावरणीय (दर्शन—सामान्य

दीपमाला की रात्रि को दो महान् मांगलिक कार्य सम्पन्न हुए थे। एक भगवान महावीर का निर्वाण और दूसरे भगवान गौतम को केवल ज्ञान की प्राप्ति। यही कारण है कि दीपमाला की रात्रि जैनों की परम आराध्य तथा परम उपास्य रात्रि बन गई है। जैन लोग इस रात्रि को सबसे महत्त्वपूर्ण तथा आत्म-शुद्धि की सर्वोत्तम सन्देशवाहिका रात्रि समझते हैं। शास्त्र कहता है कि इस रात्रि को आकाश के निवासी देव-देवियों ने भी वीरनिर्वाण और श्री गौतम स्वामी के केवल ज्ञान का महोत्सव मना कर प्रभु वीर तथा श्री गौतम जी महाराज के चरणों में अपनी-अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की थीं। वृद्ध-परम्परा का विश्वास है कि अतीत की भांति आज भी देव-देवियां महावीर-निर्वाण तथा गौतमीय केवल-ज्ञान के उपलक्ष्य में आमोद-प्रमोद करते हैं और उत्सव मनाते हैं।

भगवान राम और दीपमाला—

जैनेतर लोगों में विश्वास पाया जाता है कि दीपमाला

बोध को आच्छादित करने वाला), मोहनीय (जिससे आत्मा मोह को प्राप्त हो) और अन्तराय (पदार्थों के देने, लेने आदि में विघ्न उपस्थित करने वाला) इन चार कर्मों के क्षय के अनन्तर ही केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिए इन चार कर्मों में भी सर्वप्रथम मोह को क्षय करना पड़ता है। श्री गौतम स्वामी जी महाराज का जब मोह कर्म क्षय हो गया और उसके क्षय होते ही जब अन्य तीन ज्ञानावरणीय आदि घातिक कर्म क्षीण हो गए तो उन्हें एकदम केवल ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की प्राप्ति हो गई।

का आरम्भ भगवान राम से हुआ है। जब मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम वनवास—काल समाप्त करके वापिस आये थे तो अयोध्या-निवासियों ने रात्रि को दीपमाला की थी, घर-घर दीप जलाकर भगवान राम का स्वागत किया था। वही दीपमाला अविच्छिन्न गति से आज भी चली आ रही है, किन्तु उपरोक्त मान्यता सत्यता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। आप ही विचार करें कि जब आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से रामलीला प्रारम्भ करके आश्विन शुक्ला दशमी को विजय-दशमी (दशहरा) मनाई जाती है और एकादशी को भरत-मिलाप (राम भरत का संगम) कर दिया जाता है। (भरत-मिलाप का अर्थ है कि भगवान राम का वनवास-काल समाप्त करके वापिस अपनी राजधानी में चले आना), तब आश्विन शुक्ला एकादशी से लेकर कार्तिक अमावस्या तक के १६ दिनों के अनन्तर अयोध्या-निवासियों का दीपमाला महोत्सव करने का क्या प्रयोजन? भगवान राम का अयोध्या-प्रवेश तो आश्विन शुक्ला एकादशी को हो गया हो और उसका हर्ष कार्तिक अमावस्या की रात्रि को दीपमाला के रूप में मनाया गया हो, इस असंगत व्यवधान कोई समाधान नहीं है। इसके अतिरिक्त बाल्मीकि रामायण तथा तुलसी रामायण आदि में भी "कार्तिकी अमावस्या की रात्रि को रामागमन के उपलक्ष्य में अयोध्या--निवासियों द्वारा दीपमाला की गई हो" ऐसा कोई उल्लेख देखने में नहीं आया। तब यह कैसे माना जा सकता है कि दीपमाला का मूल भगवान राम का अयोध्याप्रवेश है? मानना पड़ेगा कि भगवान राम का कार्तिकी दीपावली के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। हां, यदि कोई विद्वान् दीपमाला को भगवान राम के अयोध्याप्रवेश

से संबन्धित सिद्ध करने के लिए कोई सबल प्रमाण उपस्थित करे तो उस पर विचार किया जा सकता है।

विजय–दशमी की सत्यता—

तुलसी रामायण (रामचरित मानस) के किष्किन्धा नामक कांड की एक चौपाई हमारे ऊपर के अभिमत की पूर्णतया पुष्ट करती है। वह चौपाई निम्नोक्त है—

वर्षा गत निर्मल ऋतु आई।
सुधि न तात ! सीता की पाई ॥

इस चौपाई में राम लक्ष्मण से कहते हैं कि हे भ्रात ! वर्षा ऋतु व्यतीत हो गई है, सावन और भाद्रपद का मास समाप्त हो गया है तथा निर्मल अर्थात् शरद ऋतु चालू हो गई है परन्तु अभी तक सीता का कोई समाचार नहीं मिला, उसका कोई पता नहीं लग रहा। सीता कहां है ? और उसे कौन चुरा कर ले गया है ? आदि बातों की कोई जानकारी नहीं मिल रही है।

शरद ऋतु में आश्विन और कार्तिक ये दो मास आते हैं। भगवान राम लक्ष्मण से कह रहे हैं कि लक्ष्मण ! आश्विन मास भी आरम्भ हो गया है किन्तु अभी तक सीता का कोई पता नहीं चला। इस संदर्भ से यह तो नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि आश्विन मास के आरम्भ तक सीता अज्ञात अवस्था में ही रही। उसका कोई पता नहीं लग सका।

आजकल आश्विन के २५ वें दिन विजय--दशमी पर्व मनाया जाता है। यह कहां तक सत्य है ? ज़रा गंभीरता से विचार

कीजिये। भगवान राम के कथनानुसार कम से कम आश्विन मास के दो चार दिन तो अवश्य व्यतीत हुए ही हैं। इन दिनों को २५ दिनों में से निकाल दीजिये तो अवशिष्ट २० या २१ दिन रह जाते हैं। इतने अल्प दिनों में हनुमान का लंका भेजना, हनुमान का लंका में जाकर सीता का पता लगाना, लंका पर आक्रमणार्थ इधर--उधर से सेनाओं का एकत्रित करना, सेना के लिये भोजनादि सामग्री की व्यवस्था करना. लंका में जाने के लिये समुद्र पर पुल का बांधना, लंका में अंगद का दूत बनकर जाना, इन्द्रजीत और कुंभकर्ण जैसे बली और रावण जैसे पराक्रमी योद्धाओं द्वारा भीषण युद्ध लड़ा जाना आदि बातें कैसे सम्पन्न हो सकती हैं? कुछ समझ में नहीं आता। आज के विज्ञान-युग में भी ऐसे भीषण युद्ध, पुल आदि के निर्माण में काफी समय लग जाता है, तो उस युग में ये बातें इतने थोड़े काल में कैसे सम्पन्न हो गईं? समझ से बाहिर की बात है। जब आश्विन शुक्ला दशमी के दिन विजयदशमी का होना भी सन्दिग्ध है तो दीपमाला का मूल भगवान राम का अयोध्याप्रवेश कैसे कहा व माना जा सकता है? ये सब घटनाएँ पूर्वापर विरोध का समाधान मांगती हैं।

दीपमाला की व्यापकता—

सत्य-अहिंसा के अग्रदूत, जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण* प्राप्त करना, उनका मोक्ष

---

*निर्वाण और मृत्यु ये दो शब्द हैं। इन दोनों के अर्थ में महान अन्तर है। निर्वाण शब्द का प्रयोग प्रायः वहां होता है जिस जीवनान्त के अनन्तर व्यक्ति का जन्म न हो। दूसरे शब्दों में-मृत्यु

में पधारना ही दीपमाला के आरम्भ का मूल कारण है, यह तथ्य आपके सामने ऊपर की पंक्तियों में रखा जा चुका है। अब उन ऐतिहासिक और धार्मिक महापुरुषों के जीवनों पर भी संक्षेप में दृष्टिपात कर लेना चाहिये, जिन्होंने दीपमाला के इस पवित्र दिन स्वर्गवासी बनकर या कोई विशेष कार्य करके दीपमाला की लोकप्रियता को और अधिक व्यापक बनाने में अपना पुण्य योग दिया है। अतः नीचे की पंक्तियों में दीपमाला के पुण्य दिन से सम्बन्धित कुछ ऐतिहासिक जीवनों पर प्रकाश डाला जाएगा।

श्री हरगोबिंदसिंह जी और दीपमाला—

सिक्ख सम्प्रदाय में दीपमाला एक विजयोत्सव के रूप में मनाई जाती है। सिक्ख सम्प्रदाय के एक स्वनामधन्य गुरु श्री हरगोविन्दसिंह जी की विजय इस दीपमाला के पुण्य दिन से सम्बन्धित है। श्री हरगोविन्दसिंह जी ने गुरु अर्जुनसिंह के पश्चात् सिक्ख सम्प्रदाय की बागडोर संभाली थी। आरम्भ में तो उन के तथा उस समय के मुग़ल--सम्राट् जहांगीर के सम्बन्ध बड़े अच्छे थे किन्तु उनके बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर जहांगीर ने उनको ग्वालियर के दुर्ग में बन्दी बनाने का प्रयत्न किया था। कहा जाता है कि गुरु हरगोविंदसिंह जी ने अपने ५२ शिष्यों के साथ न केवल अपने को बन्दि-गृह से मुक्त कराया

की मृत्यु या जन्म-मरण की सर्वथा समाप्ति का नाम निर्वाण है और जिस मरण के पश्चात् पुनः जन्म हो, उत्पत्ति हो, उसे मृत्यु कहते हैं। मृत्यु संसारी जीव की होती है और निर्वाण प्रायः किसी वीतराग महापुरुष का होता है।

प्रत्युत अन्य जितने भी लोग वहां बन्दी कर लिये गए थे उन सबको भी मुक्त करा दिया। ग्वालियर में विजय प्राप्त करके जिस दिन गुरु हरगोविंदसिंह जी अमृतसर वापिस आये थे, उस दिन दीपमाला का ही पुण्य दिवस था। अपने गुरु की विजय-यात्रा की सफलता के उपलक्ष्य में उस दिन से यह पर्व (त्यौहार) सिक्ख लोग भी बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। इस दिन अमृतसर के स्वर्ण-मन्दिर की सजावट देखने योग्य होती है।

स्वामी दयानन्द और दीपमाला—

आर्य समाज आन्दोलन के जन्मदाता स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने इस दीपमाला के पुण्य दिन इस पार्थिव शरीर से किनारा किया था। ५९ वर्षों की आयु में एक हत्यारे के द्वारा विष पिलाए जाने पर इसी पवित्र दिवस में सायंकाल के समय स्वामी जी ने इस भौतिक शरीर से छुटकारा पाया था। यही कारण है कि हमारे आर्य समाजी भाई अपने स्वर्गवासी नेता की पुण्य स्मृति में अपने ढंग से बड़े समारोह के साथ दीपमाला का पर्व मनाते हैं।

स्वामी रामतीर्थ और दीपमाला—

वेदान्त दर्शन की साकार मूर्ति, आध्यात्मिक मस्ती के अवतार, परमहंस स्वामी रामतीर्थ इसी दीपमाला के पुण्य दिन गंगा की नीली लहरों में समाए थे। इतिहास बताता है कि १७ अक्टूबर १९०६ को यही दीपमाला का दिन था। लोग अपने-अपने घरों को सजा रहे थे। दीपक जलाने की तैयारी कर रहे थे, इधर स्वामी रामतीर्थ पर्वतीय प्रदेश में प्रकृति का सौन्दर्य निहारने में मस्त थे। उस समय पर्वत पर बर्फीली हवा

चल रही थी। गंगा का पानी बर्फ जैसा ठंडा था। गंगा की तेज़ धारा बड़ी-बड़ी चट्टानों से टकरा कर मदमाती सी बह रही थी। स्वामी राम के मन में उमंग उठी। वे बहते पानी में उतर गए। बस फिर क्या था, गंगा की तेज धाराओं ने उमड़-उमड़ कर उन्हें अपनी गोद में ले लिया। चारों ओर नीरवता थी। देवदार के ऊंचे वृक्ष ही चुपचाप इस अपूर्व मिलन का दृश्य देख सके थे। संक्षेप में अपनी बात कह दूं—स्वामी राम प्रकृति को मां कहा करते थे, ३३ वर्षों के बाद उसी प्रकृति मां की गोद में सदा के लिये सो गये।

स्वामी राम अपने युग के एक महान् योगी थे और विराट व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। पुरातन आध्यात्मिकता के वह एक नवीन प्रतिनिधि बनकर सभ्य संसार के सामने प्रकट हुए थे। इनके विचार बड़े ऊंचे थे और आध्यात्मिकता से ओत--प्रोत रहा करते थे। आप अपने प्रवचनों में फरमाया करते थे—

जहां अहंकार है, वहां भगवान नहीं रहता। मैं और मेरा का भेद हमारे मन को उन्नति करने से रोकता है। जबतक कोई बीज पृथ्वी में अपना अस्तित्व नहीं मिटा देता, तब तक वह पौधा बन कर फूल नहीं बन सकता।

भगवान का सब से अच्छा नाम प्रेम है, और गरीबों में सच्ची सहानुभूति ही सच्चा धर्म है। उसके बिना धर्म की रीतियां खोखली हैं।.........

इस तरह स्वामी राम बड़े आध्यात्मिक विचारों के व्यक्ति थे, निर्भयता, पवित्रता और विश्व-प्रेम आपके कण-कण में निवास करता था।

इन ऐतिहासिक महापुरुषों के अतिरिक्त और भी कई एक महापुरुषों का और सन्तों का इस दीपमाला से सम्बन्ध हो सकता है, किन्तु इस सम्बन्ध में हमारी जानकारी में जो कुछ था, वह आपके सामने प्रस्तुत कर दिया गया है। भविष्य में न जाने और कौन-कौन महापुरुष इस दीपमाला के साथ अपना-अपना पुण्य सम्बन्ध जोड़ कर इसके चरणों में अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करेगा, और दीपमाला की इस लोकप्रियता को और अधिक व्यापक बनाने में अपना पुण्य योग देगा।

जूआ और दीपमाला—

आप विस्मित होंगे कि आज भी लोगों में कितना भीषण अन्धविश्वास बैठा हुआ है। स० १९५० में हमारा चातुर्मास फगवाड़ा मंडी में था। वहां एक सज्जन से दीपमाला के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने का अवसर मिला था। उस ने कहा था कि जो व्यक्ति दीपमाला की रात्रि को जूआ नहीं खेलता वह मर कर गधा बनता है। सुनते ही मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा—जूआ खेलने वाले को इस जन्म में गधा बनते तो हमने देखा है। परलोक में उसकी क्या दुर्दशा होती है? उसे भगवान जानें।

आज के मानव में इतना अंध-विश्वास घर कर गया है कि आज वह दिन-प्रतिदिन लकीर का फकीर बनता जा रहा है। वह अपना लाभ-हानि भी सोचने का कष्ट नहीं करता। पर्व के वास्तविक रूप को उसने भुला दिया है। जूए जैसे नीच कुव्यसन को भी आज वह पर्व की आराधना समझ बैठा है। मेरा विश्वास है कि यदि ऐसे अन्धविश्वासों की छाया तले मानव पर्वों के महासागर में लाखों बार भी डुबकियां लगा ले तब भी वह वहां से सूखा ही निकलेगा उसे आत्म--शुद्धि का एक

कण भी प्राप्त नहीं हो सकता।

जूआरी और गधा—

हमने देखा है कि जूआरी की दशा गधे से भी अधिक बुरी होती है। जूआरी जहां कहीं भी जाता है वहीं पर वह गधे की तरह डण्डे खाता है, उसे सर्वत्र अपमान और तिरस्कार का विष पीना पड़ता है। जूआरी की सर्वदा सर्वत्र उपेक्षा होती है, उसका कोई मान नहीं करता, सभी उससे घृणा करते हैं। घर जाता है तो घर वाले उसकी दुर्दशा करते हैं। मां गालियां देती है, नारी कोसती है, भाई मार-पीट करते हैं, इस तरह माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-बहिन घर का कोई भी व्यक्ति जूआरी का आदर नहीं करता, न उसे कोई पूछता है। सर्वत्र उसे अपमानित एवं तिरस्कृत होना पड़ता है। घर से बाहिर निकलता है तो लोग उसे बुरा-भला कहते हैं, उसकी ओर अंगुलियां करते हैं, इस तरह उसे कहीं भी सम्मान से चलना, बैठना, उठना, सोना, जागना, बोलना, खाना और पीना नसीब नहीं होता। सर्वत्र उस पर तिरस्कार तथा दुतकार की वर्षा होती है।

जूआरी पूर्णतया अविश्वास का पात्र बन जाता है, कोई उस पर विश्वास नहीं करता है। वह कितनी भी बातें बनाता चला जाए, कितनी भी सफाइयां पेश करने लगे, कोई उसे सत्यवादी मानने को तैयार नहीं होता। चाहे वह लाख बार राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, गुरु नानक या अन्य अपने इष्ट देव की सौगन्धें खाता चला जाए तथापि उसकी वाणी को कोई सत्य नहीं मानता। जूआरी को सर्वथा और सर्वदा झूठा और विश्वासघाती समझा जाता है। दूसरे लोगों की तो बात दूर रही, समझदार घर की नारी भी अपने जूआरी पति पर विश्वास

नहीं करती। वह भी उससे सदा सावधान और सतर्क रहती है, और कभी-भी उसकी बातों में आने का यत्न नहीं करती।

संसार का ऐसा कौन सा नीच कर्म है जो जूआरी के हाथों से नहीं होता ? जूआरी के जीवन में सभी दुष्कर्म खेलने लग जाते हैं। जूआरी झूठ बोलता है, लोगों को धोका देता है, उनके साथ विश्वासघात करता है। लोगों की आंखों में धूल झोंकने में कोई कसर नहीं छोड़ता है। चोरी करता है, लोगों की जेबें कतरता है, घर के बरतन, वस्त्र आदि चुरा कर बाजार में बेच देता है, नारी के आभूषणों पर हाथ साफ कर देता है तथा घर आदि स्थावर सम्पत्ति को भी गिरवी रख देता है। अधिक क्या कहें, जीवन की प्रत्येक बुराई जूआरी के जीवन का साथी बन जाती है। प्रतिपल और प्रतिक्षण वह लोगों का अनिष्ट करने का अवसर देखता रहता है। अन्त में जब किसी भी तरह उसका वश नहीं चलता तो अपने को समाप्त करने की कोशिश करता है, बुरी तरह मरने की ठान लेता है। कोई विष खाता है, कोई अपने वस्त्रों पर पैट्रोल या मिट्टी का तेल डालकर अपने को आग लगा लेता है, कोई गाड़ी के नीचे सिर रख कर जीवनान्त करने का यत्न करता है। इस तरह जूआरी मृत्यु के लिये अनेकानेक प्रयत्न करता है। जूआरी के जीवन के अन्तिम दो ही साथी हुआ करते हैं। एक मृत्यु, दूसरा जेलखाना। यदि जूआरी लोगों को ठगने में प्रयुक्त किए अपने हथकण्डों से निराश हो जाता है तो वह मरने की सोच लेता है और यदि वह मृत्यु के पंजे से किसी तरह बच जाए, या आत्म-हत्या करता हुआ पकड़ लिया जाए तो लोग उसे जेलखाने में पहुँचा देते हैं। जेलखाने में जाकर फिर जूआरी को अनेकविध

भीषण यातनाओं तथा वेदनाओं का उपभोग करना पड़ता है।

जूआरी के जीवन की जो बाह्य दुर्दशा होती है, निरन्तर जो उसे अपमान तथा अनादर के विष-प्याले पीने पड़ते हैं, उनका संक्षेप में ऊपर की पंक्तियों में विवेचन किया गया है। इस विवेचन से यह भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है कि जूआरी इसी जीवन में गधा बन जाता है, इसी जीवन में गधे की अवस्था को पा लेता है, और गधे से भी अधिक भर्त्सना तथा अवहेलना का पात्र बनता है, फिर परलोक में जूआरी की जो दुरवस्था होती है उसे केवल ज्ञानी के अतिरिक्त कौन बता सकता है? अतः भूल कर भी ऐसा नहीं समझना चाहिए कि दीपमाला की रात्रि को जूआ न खेलने वाला गधा बनता है। प्रत्युत यही समझना चाहिए कि जूआ खेलने वाला ही गधा बनता है, गधे की तरह घृणा का पात्र होता है।

जूए के दुष्परिणाम—

जूआ खेलना एक आध्यात्मिक दूषण माना गया है, इस से आत्मगुणों का ह्रास होता है, मानव जीवन का यह सर्वतोमुखी पतन कर डालता है। जिस किसी ने जूए को अपना साथी बनाया है, इसे अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है मानों उसने अपने जीवन को दुःख-सागर में धकेल दिया है, जीवन की बाह्य तथा अन्तरंग शान्ति को कान से पकड़ कर बाहिर निकाल दिया है और दुःखों को निमन्त्रण दे डाला है। इतिहास इस तथ्य का गवाह है। इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण उपलब्ध होते हैं जो इस सत्य का पूर्णतया पोषण एवं समर्थन करते हैं। भारतनरेश पाण्डु के पुत्र पाण्डवों को कौन नहीं जानता? भारत का बच्चा-बच्चा पाण्डवों की जीवन-गाथाओं

से परिचित है। धर्मराज युधिष्ठिर जैसे सत्यवादी, वीर अर्जुन जैसे धनुर्धारी और भीम जैसे गदाधारी बली योद्धाओं को वन-वन की धूलि चटाने वाला कौन था ? यही नीच जूआ था। इसी जूए ने पातिव्रत्य धर्म की सजीव प्रतिमा भगवती द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित एवं तिरस्कृत करवाया था। जूए की दुष्टता का कहां तक वर्णन करता चला जाऊं ? नल जैसे समृद्धिशाली भूपति की दुर्दशा करवाने वाला भी यही जूआ था। इसी जूए ने सतीधुरीणा दमयन्ती को आपदाओं की चक्की में पिसवाया था। जूआ जीवन का सर्वतोमुखी विनाश करता है, यह दुर्गुणों का स्रोत है, दुःखों और संकटों का जन्मदाता है, अतः सुखाभिलाषी सहृदय मानव को आपातरमणीय इस जूए से सदा दूर रहने का यत्न करना चाहिये।

सात कुव्यसनों में एक—

जूआ मानव जीवन का एक महान दोष है। जैन शास्त्र इसे कुव्यसन के नाम से पुकारते हैं। जैनशास्त्रों में सात कुव्यसनों का वर्णन पाया जाता है। उन सात कुव्यसनों के नाम निम्नोक्त हैं :—

द्यूतं च मांसं मदिरा च वेश्या,
हिंसा च चौर्यं परदार-सेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके,
घोरातिघोरं नरकं नयन्ति ॥

अर्थात्—१—द्यूत-शर्त लगाकर ताश आदि खेलना, २—मांसाहार करना, ३—मदिरापान करना, ४—वेश्यागमन करना, ५—हिंसा-शिकार खेलना, ६—चोरी करना, ७—पर-

स्त्रीगमन करना, ये सात कुव्यसन हैं—जीवन के महान दूषण हैं। ये कुव्यसन मानव जीवन को घोरातिघोर (अत्यधिक भीषण) नरक में ले जाते हैं। इन कुव्यसनों के प्रताप से मानव नरक की लोम-हर्षक भयंकर वेदनाओं का उपभोग करता है।

ऊपर के सात कुव्यसनों में जूए का प्रथम स्थान है, या यूं कहें कि जीवन की अवनति का आरम्भ जूए से होता है। जूआ खेलने का अर्थ है—जीवन के विनाश का प्रथम पग उठाना। जैन शास्त्रों की मान्यता के अनुसार जीवन का पतन जूए से चालू होता है। अतः इस कुव्यसन से सदा दूर रहने का यत्न करना चाहिये।

जैनेतर दर्शन में जूआ—

जूए के सम्बन्ध में जैनदर्शन का जो विश्वास है, वह ऊपर की पंक्तियों में आपको बतलाया जा चुका है। जैन दर्शन के अतिरिक्त जैनेतर दर्शन जूए के सम्बन्ध में जो अभिमत रखता है, उसे भी समझ लीजिए। वैदिक दर्शन के प्रामाणिक धर्म-शास्त्र मनुस्मृति में लिखा है—

द्यूतं समाह्वयं चैव, राजा राष्ट्रान्निवारयेत्।
राज्यान्ताकरणावेतौ, द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्॥

(मनुस्मृति अ० ६--२२१)

अर्थात्—सुखाभिलाषी राजा को द्यूत-जूआ और समाह्वय (पशु और पक्षी आदि को लड़ाकर हार-जीत करना) को अपने राज्य से बाहिर निकाल देना चाहिये। द्यूत और समाह्वय को राज्य से बाहर निकालने का कारण यही है कि ये दोनों दोष राजाओं के राज्य का नाश करने वाले होते हैं।

जूआ केवल धर्म-शास्त्रों के द्वारा ही निषिद्ध नहीं बतलाया गया है प्रत्युत नीतिशास्त्र भी जूए का सर्वथा अनादर करते हैं। नीतिकारों की दृष्टि में जूए का क्या स्थान है ? इसे नीचे के श्लोक में देखिये—

न श्रियस्तत्र तिष्ठन्ति, द्यूतं यत्र प्रवर्तते ।
न वृक्षजातयस्तत्र, विद्यन्ते यत्र पावकाः ॥

इस पद्य में जूए को अग्नि के तुल्य कहा गया है। अग्नि की तरह जूआ जीवन का नाश करता है। जिस भूमि पर सदा आग जलती रहती है, अग्नि की ज्वालाओं ने जिस भूमि को दग्ध कर डाला है, उस की उत्पादन शक्ति को समाप्त कर दिया है, उस भूमि पर वृक्ष कभी उत्पन्न नहीं हो सकते, किसी प्रकार की वनस्पति वहां नहीं लहलहा सकती। नीतिकार बतलाते हैं कि जैसे अग्नि द्वारा दग्ध हुई भूमि में किसी प्रकार के घास-फूस का जन्म नहीं हो सकता, वैसे ही जिस जीवन को जूए की आग जला रही है, जूए की ज्वालाओं ने जिस जीवन-भूमि को भस्मसात् कर दिया है, वहां वसन्त नहीं आ सकता, लक्ष्मी का वहां वास नहीं हो सकता। लक्ष्मी वहां से प्रस्थान कर कर जाती है। जूआरी के यहां कभी लक्ष्मी नहीं खेला करती, वहां तो दरिद्रता तथा दीनता का ही सर्वतोमुखी साम्राज्य हुआ करता है।

सैम्युएल क्लीमेंस (Samuel Clemens) नाम के एक विदेशी विद्वान हो गये हैं। जूए के सम्बन्ध में उन्होंने जो अपना अभिप्राय साहित्यजगत में उपस्थित किया है, वह भी मननीय है। उसे भी जान लेना उपयुक्त रहेगा। वे लिखते हैं—

इन्सान की ज़िन्दगी में दो वक्त हैं, जबकि उसे जूआ नहीं खेलना चाहिये। एक तो जब वह खेल नहीं सकता और दूसरे जब वह खेल सकता हो।

जूए के दुष्परिणामों की चर्चा संक्षेप में ऊपर की पंक्तियों में की जा चुकी है। जैन तथा जैनेतर सभी दर्शनों ने जूए को एक महान दूषण बताया है, और इसे जीवन से निकाल देने की मधुर प्रेरणा प्रदान की है। जिस मानव में मानवता की चोटियों को पार करने की और जीवन को सुखी बनाने की लालसा है, कम से कम उसे तो जूए से दूर ही रहना चाहिए, भूलकर भी जूए को हाथ नहीं लगाना चाहिए।

गधा बनने के चार कारण—

जो जूआ जीवन के विकास का इतना घातक है, और जीवन की अवनति का मूलाधार है, स्रोत है, उसके सम्बन्ध में "दीपमाला की रात्रि को जूआ न खेलने वाला व्यक्ति मर कर गधा बनेगा।" यह कहना जीवन की कितनी बड़ी अज्ञानता है, और जीवन की कितनी बड़ी भूल है ? ऐसे लोगों से मैं पूछता हूँ कि यदि जूआ न खेलने से व्यक्ति गधा बनता है, तो ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी, सन्त मर कर क्या बनेंगे ? वे तो कभी जूए के निकट भी नहीं जाते। जूआ खेलना तो क्या, वे स्वप्न में भी इसका संकल्प नहीं करते। तो क्या वे मर कर गधे बनेंगे ? और यदि ऋषि मुनि भी मर कर गधे की योनि में चले जाएँगे तो स्वर्ग में कौन जायगा ? मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि जूआ न खेलने से आप गधा नहीं बनेंगे। गधा योनि में जाने का कारण "जूआ न खेलना" नहीं है। गधा बनने के कारण दूसरे हैं। गधा पशु गति का प्राणी

है। पशु बनने के चार कारण होते हैं। जैन शास्त्रों के अनुसार चार कारणों से जीव पशु योनि को प्राप्त करता है। उन कारणों को भी समझ लीजिए। वे निम्नोक्त हैं—

१—माया—छल प्रपंच और कुटिल भावों का नाम माया है। मन में कुछ और हो तथा वाणी में कुछ और ही हो, यह अवस्था जीवन में बनाए रखना। "मुंह में राम-राम, और बगल छुरी" की तरह ऊपर से मीठा व्यवहार करना और दिल में अनिष्ट चाहना।

२- माया में माया—छल में छल करना। एक छल को छिपाने के लिये दूसरा छल करना, प्रतिक्षण जीवन में कपट रचना करते रहना, छल को ही अपना आराध्य बना लेना।

३- झूठ बोलना—झूठी बातों में अधिक रस लेना। बात-बात में मृषावाद का आश्रय लेना। सत्य को जीवन से निकाल देना। झूठ के द्वारा ही जीवन का निर्वाह करना। झूठी गवाहियां देना, झूठे दस्तावेज लिखना, झूठे हस्ताक्षर करना, झूठे लेख लिखना। किसी की धरोहर को हजम कर जाना आदि।

४- झूठे तोल माप रखना—तोलने के बट्टे बेचने के और तथा खरीदने के और रखना। इसी प्रकार कपड़ा, तेल, भूमि आदि पदार्थों को मापने के साधनों के प्रयोग में प्रामाणिकता से काम न लेना।

मनुस्मृति में पशुगति की कारणसामग्री—

मनुस्मृति के बारहवें अध्याय में पशु-योनि को प्राप्त करने के चार कारण लिखे हैं। उन्हें भी समझ लीजिए।

मनुस्मृतिकार ने अशुभ कर्म को मानस, वाचनिक और कायिक इन भेदों से तीन भागों में विभक्त किया है। तीनों की कारण-सामग्री का विश्लेषण करते हुए वहां लिखा है—

दूसरे के धन को अन्याय से ग्रहण करने का चिन्तन करना, दूसरों का अनिष्ट करने की इच्छा रखना, परलोक नहीं है, यह शरीर ही आत्मा है, ऐसा मिथ्या विश्वास बनाए रखना, यह त्रिविध मानस अशुभ कर्म कहा गया है। कठोर वचन कहना, झूठ बोलना, परोक्ष में किसी के दोष कहना, असम्बद्ध (अनर्थकारी) प्रलाप करना, यह चतुर्विध वाचनिक कर्म होता है। पर द्रव्य का अपहरण करना, हिंसाजनक कार्य करना, पर स्त्री के साथ मैथुन करना, यह त्रिविध शारीरिक कर्म कहलाता है।

मनुस्मृति में त्रिविध अशुभ कर्मों के फल का भी निर्देश किया गया है। वहां लिखा है कि शारीरिक अशुभ कर्म से जन्मान्तर में मनुष्य स्थावर (वृक्ष आदि) बनता है तथा वाणी दोष से पशु, पक्षी और मानसिक अशुभ कर्म से मनुष्य चाण्डाल योनि पाता है।*

मनुस्मृतिकार के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पशु-पक्षी की योनि को प्राप्त करने का कारण "दीपमाला की रात्रि में जूए का न खेलना" नहीं है। मनुस्मृति की मान्यता के अनुसार वही मनुष्य पशु बनता है, अर्थात् गधे की योनि को प्राप्त करता है, जो झूठ बोलता है, निंदा-चुगली करता है, ऊल-जलूल बातें बनाता है। यदि मनुस्मृति को "दीपमाला की रात्रि को जूआ न खेलने वाला गधा बनता है" यह बात इष्ट होती तो वह पशु-पक्षी की योनि को प्राप्त करने की कारण-सामग्री

---

*देखो—मनुस्मृति अ० १२, श्लोक ५ से लेकर ६ तक।

में इस बात का अवश्य निर्देश करती । पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, इससे यह स्वत: प्रमाणित हो जाता है कि जूआ न खेलने से कोई गधा नहीं बनता ।

हमारा कर्तव्य--

जैन दर्शन तथा जैनेतर दर्शन के अनुसार गधा-योनि में जाने के ये चार--चार कारण होते हैं । जैन-अजैन किसी भी धर्म-शास्त्र में कहीं ऐसा नहीं लिखा है कि जूआ न खेलने से मानव गधे की योनि को प्राप्त करता है । अतः इस अन्ध विश्वास और अन्ध परम्परा का सदा के लिए जीवन से बहिष्कार कर देना चाहिए । जूआ खेलना तो वैसे ही बुरा है, अनिष्टप्रद है, तब दीपमाला की पवित्र रात्रि को ऐसा कुकर्म करना जीवन की सब से बड़ी भूल है । दीपमाला की रात्रि को तो भगवान के नाम का जाप करना चाहिए । यह रात्रि कोई सामान्य रात्रि नहीं है । यह तो भगवान महावीर की निर्वाण-रात्रि है, श्री गौतम जी महाराज के केवल-ज्ञान की संसूचिका रात्रि है और महावीरनिर्वाण तथा गौतमीय केवलज्ञान के उपलक्ष्य में किये गए देवी और देवताओं के महोत्सव की रात्रि है । अतः इस रात्रि को अधिकाधिक मांगलिक कृत्य करने चाहिएं, अन्तर्जगत के विकारों को दूर हटाकर उसे विशुद्ध बनाना चाहिए । आत्ममन्दिर में जप, तप, त्याग-वैराग्य के दीपक जलाकर उसे जगमगाना चहिए । जीवन के भविष्य को उज्ज्वल और समुज्ज्वल बनाने का इससे बढ़कर और कोई मार्ग नहीं है ।

दीपमाला और आतिशबाज़ी--

दीपमाला पर्व की आध्यात्मिकता तथा पवित्रता का दिग्दर्शन

प्रस्तुत निबन्ध के आरम्भ में भली भाँति कराया जा चुका है। दीपमाला वस्तुत: एक महान और एक पवित्र पर्व है। इस की पवित्रता में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। यह पर्व सामान्य पर्व नहीं है, इस की असाधारणता सर्वविदित है। यह पर्व भगवान महावीर के आध्यात्मिक प्रकाश--पुंज का तथा भगवान गौतम के केवल--ज्ञान की महाज्योति का एक मंगलमय प्रतीक है। ऐसे पवित्र और आध्यात्मिक पर्व को भी आतिशवाज़ी जलाने जैसी कुत्सित और घृणित प्रवृत्ति में परिवर्तित कर देना कितने दुःख और शोक की बात है ! जो पर्व मानव को उसके अन्तर्जगत को सत्य अहिंसा की महाज्योति से ज्योतित कर लेने की पवित्र प्रेरणा प्रदान करता हो, उसे आतिशवाज़ी जलाने, पटाखे चलाने आदि में ही समाप्त कर देना, मानव-जीवन की कितनी बड़ी विडम्बना है ? जो पर्व व्यष्टि और समष्टि के लिए वरदान बनकर आया हो, वह भी यदि मनुष्यता के लिये अभिशाप बन जाए तो मानव जीवन के लिए इससे बढ़ कर लज्जा की और क्या बात हो सकती है ?

सबसे बढ़ कर आश्चर्य की बात तो यह है कि मनुष्य भली भाँति जानता है कि आतिशवाज़ी जैसी दूषित प्रवृत्ति का इस पवित्र पर्व दीपमाला के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, और वह यह भी खूब समझता है कि इस दुष्प्रवृत्ति से धन का नाश होता है, मानव-जीवन और पशु जीवन की हानि होती है, तथापि वह इस आतिशवाज़ी का पिण्ड नहीं छोड़ता; प्रत्युत दिन प्रतिदिन उसके निर्माण में, उसके विकास तथा प्रचार में अधिकाधिक रस लेता जा रहा है, ज़रा भी उसमें संकोच नहीं करता। बड़े उत्साह तथा हर्ष के साथ उस का सम्वर्द्धन करता

चला जाता है। सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति बुराई को बुराई के स्वरूप में देखता है उसका उस बुराई से पृथक् होना संभव है, किन्तु जो बुराई को भी अच्छाई के रूप में देखने लग जाए, और उसे अपने मनोविनोद का एक साधन समझ ले, वह उस बुराई से बच सकेगा, ऐसी आशा कभी नहीं की जा सकती। आज के मनचले मनुष्य की ऐसी ही दशा हो रही है। यह आतिशबाजी जैसी बुराई को भी अच्छाई के रूप में देखने लग गया है, उसने इसे अपने मनोविनोद का एक अंग बनालिया है। ऐसी दशा में इसका सुधार हो तो कैसे हो?

दीपमाला के दिनों आतिशबाजी का बड़ा जोर होता है। जहाज चलाये जाते हैं, सिंगाड़ा, जलेबी, चिड़-चिड़, अनार, सांप, पटाखें, बम और भी न जाने कितनी सामग्री जुटाई जाती है। जब बम चलाये जाते हैं तो इतने जोर के भयंकर शब्द होते हैं कि कानों के परदे फटने को हो जाते हैं, शान्त और स्वस्थ व्यक्ति का कलेजा भी कम्पायमान हो उठता है। समझ में नहीं आता कि आज के मनचले युवक को क्या हो गया है? वह क्यों इस तरह की अनर्थकारी प्रवृत्तियों में इतना रस लेने लग गया है? भूखे और दीन-हीन देश का निवासी होकर भी वह क्यों इस तरह व्यर्थ में धन राशि का स्वाहा कर देता है? सुना जाता है कि दीपमाला के दिनों करोड़ों रुपयों की आतिशबाजी जल जाती है। या यूं कहें-इन दिनों देश की करोड़ों की सम्पत्ति को आग लगा दी जाती है। जो देश रोटी के लिये तरसता हो, जिसके बच्चे दूध के बिना विलखते हों, जिसके युवक चिन्ताओं के मारे जवानी में बूढ़े हो रहे हों, जिस देश के विद्यार्थी धनाभाव के कारण विद्या--ग्रहण करने में भी कठिनाई अनुभव

करते हों, जिसकी युवतियां पेट भरने के लिए अपना सतीत्व बेच सकती हों, देश के नवनिर्माण की योजनाएं जहां पड़ौसी देशों की कृपा पर निर्भर हों, इस तरह जहां दरिद्रता का ताण्डव नृत्य हो रहा हो, उस देश के वासी भी यदि आतिशबाज़ी जलाने के लिए करोड़ों रुपयों का सत्यानाश करते हैं, अपने मनोविनोद के लिए करोड़ों रुपयों को जला कर खाक बना डालते हैं, तो इससे बढ़ कर मानवता के लिये कलंक की और क्या बात हो सकती है ? देश, जाति और परिवारों के विनाश के यही ढंग हुआ करते हैं। समझदार और सुशील मानव को इस पापकारी और अनर्थकारी प्रवृत्ति का परित्याग कर देना चाहिए।

आतिशबाज़ी से धन का नाश तो होता ही है किन्तु कई बार यह मानवजीवन को भी जलाकर खाक बना डालती है। लुधियाना शहर की बात है। एक दुकान में आतिशबाज़ी का सामान पड़ा था। अचानक उस में आग लग गई। आग की ज्वालाएँ भयंकर रूप धारण करने लगीं। पनसारी की दुकान थी। इसलिए बादाम और छुहारों आदि की बोरियों को पाकर आग और भी अधिक भड़क उठी। धीरे-धीरे आग ने सारी दुकान को अपनी लपेट में ले लिया। कहा जाता है कि ३० हज़ार का सामान जल कर खाक हो गया। उस दुकान में लगभग तीन वर्ष का एक बच्चा भी सो रहा था। उसे भी आग ने बुरी तरह झुलस दिया। कितना बीभत्स और लोमहर्षक था वह दृश्य ? वज्र से वज्र हृदय भी उस बच्चे के शव को देखकर काँप उठता था। बच्चे को मां-बाप के तो आंसू ही नहीं रुकते थे। जनमानस उस समय चीख उठा था। यह सब दुष्परिणाम किस का था ? इसी घृणित आतिशबाज़ी का।

आप सदा समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं और प्रतिदिन सुनते हैं कि आतिशबाज़ी जलाने से इतने मकान जल गए, इतने पशु जल मरे, और इतने बच्चे जल कर खाक हो गए। एक नहीं अनेकों ऐसी घटनाएँ प्रायः प्रतिदिन सुनने को मिलती है, जो मानव-हृदयों को कम्पित कर देती हैं। आतिशबाज़ी जलाना पाप है, हिंसाजनक प्रवृत्ति है, इस के दुष्परिणामों का कहां तक वर्णन करता चला जाऊं ? आतिशबाजी के भयंकर शब्दों से मनुष्य तो बौखला ही उठता है, परन्तु पशु पक्षियों की भी बहुत दुर्दशा होती है। बेचारे पक्षी जो अपने-अपने स्थानों में आराम तथा शान्ति के साथ बैठे होते हैं, आतिशबाज़ी की आवाज़ों से भयभीत हो कर उड़ते हैं, रात्रि को कुछ न दीखने के कारण न जाने कहां-कहां धक्के खाते हैं और बुरी तरह मर जाते हैं। यह सब अनर्थ और पाप आतिशबाज़ी के ही कारण होता है। अतः आतिशबाज़ी से सदा दूर रहना चाहिए। आतिशबाजी दीपमाला की महत्ता के लिए अभिशाप है, कलंक है। इस से जंगम और स्थावर सभी प्रकार की सम्पत्ति का नाश होता है। अतः भूलकर भी इस को हाथ नहीं लगाना चाहिये।

आजकल की दीपमाला—

आजकल की दीपमाला और प्राचीन युग की दीपमाला की तुलना की जाये तो यह मानना पड़ेगा कि आज की दीपमाला अपने मूलरूप को खो बैठी है। आध्यात्मिक दृष्टि से उस में अनेकानेक विकार आ गये हैं। आज मंगलमूर्ति भगवान महावीर के अनन्त ज्ञान दर्शन के प्रतीक भाव-उद्योत का हमें ज़रा भी ध्यान नहीं आता है। आत्मशान्ति तथा आत्मकल्याण के लिये

सत्य, अहिंसा, संयम, तप, शांति, सन्तोष तथा आध्यात्मिक पवित्रता की एक किरण भी हम अपने अन्दर पैदा नहीं करते। दीपमाला की रात्रि में किया गया द्रव्य-उद्योत भाव-उद्योत का प्रतीक है, यह तथ्य आज हमारे मस्तिष्क मे निकल गया है। आज हम पर्व के मूल भाव को भूल गये हैं। बाह्य आडम्बरों की पूर्ति में ही पर्वाराधना समझ बैठे हैं। मकानों की सफाई में ही सैकड़ों रुपये व्यय कर देते हैं, किन्तु आध्यात्मिक विकारों का शुद्धि पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। लक्ष्मी का पूजन करने के लिये सारी रात्रि का जागरण करने को प्रस्तुत हो जाते हैं, किन्तु आनन्द और शान्ति की भाव लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए किंचित भी प्रयास नहीं करते।

दीपमाला महान पर्व है तथापि लोग मिठाइयों के खाने--खिलाने में इसे खो देते हैं। वास्तव में हमें किसी पर्व के शरीर की पूजा न करके उस की आत्मा की ही पूजा करनी चाहिए। उस पर्व की मूल भावना को पहचानना चाहिये और उसमें निहित प्रकाश--पुंज से अपने आंतरिक जीवन को प्रकाशित करना चाहिये, तभी हमारा पर्व-आराधन सफल हो सकता है, अन्यथा हम पर्व के यथार्थ फल से वंचित ही रह जाएँगे।

आज की दीपमाला में और उस युग की दीपमाला में बड़ा ही अन्तर है। उस युग में दीपमाला मनाने वाले लोग भले ही अपने मकानों की सफाई भी किया करते थे किन्तु साथ में वे अपने हृदयों की शुद्धि भी किया करते थे, उसे साफ बनाया करते थे, आत्ममन्दिर की गन्दगी को निकाला करते थे। माटी या आटे के दीपक जलाने के साथ-साथ वे लोग जप, तप, त्याग

वैराग्य, प्रेम, सहानुभूति, सद्भावना, सदाचार, सेवा और परोपकार के दीपक जला कर अपने आत्मा को प्रकाशित किया करते थे और देखा करते थे कि हमारी आत्मा में कहाँ-कहाँ निंदा, चुगली, अप्रामाणिकता (बेईमानी) और धूर्तता का मल भरा पड़ा है ? अपना आपा देखने के बाद उसे साफ किया करते थे, अपनी आत्मा के विकार दूर हटाकर उसे स्वच्छ तथा पवित्र बनाया करते थे, प्रभुभक्ति, आत्मचिन्तन और सदाचार के सरोवर में गोते लगाया करते थे, किन्तु आज उससे बिल्कुल उलटा होता है। आज की दीपमाला की तो बात ही निराली है।

आज आत्मा में भले ही सैकड़ों पाप नाचते हों, आत्म-मन्दिर भले ही सड़ता रहे, उस में कितनी भी दुर्गन्ध उठ रही हो, उस की कोई चिन्ता नहीं की जाती, किन्तु मकानों को चमकाने के लिये, साफ-सुथरा बनाने के लिये सैकड़ों और हजारों रुपये पानी की तरह बहा दिये जाते हैं। पड़ौस में कोई विधवा भूखी मर रही हो, उसके बच्चे बिलबिला रहे हों, भूख से अधमुए हो रहे हों, तो भी उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता, किन्तु फूलझड़ियों और पटाखों के लिए हजारों का खून कर दिया जाता है। अपने ही मुहल्ले में कोई ग़रीब दम तोड़ रहा हो, दर्द से कराह रहा हो, चीखें भी मारता हो तथापि उसका कोई ख्याल नहीं किया जाता, किन्तु स्वयं मिठाइयाँ खाने में, गुलछर्रे उड़ाने में बेसुध हुए जाते हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या इसी का नाम दीपमाला है ? पड़ौस में किसी का जीवन-दीप बुझ रहा है और स्वयं दीवारों या नालियों में दीप जगाने जाते हैं, क्या यही था सन्देश दीपमाला का ? नहीं-नहीं ! दीपमाला यह नहीं कहती। दीपमाला का सन्देश बड़ा निराला और अनुपम है, मगर आज

उसे भुला दिया गया है। मिठाइयों की टोकरियां देखकर दीपमाला की आवाज़ को अनसुना कर दिया गया है। पटाखों के भीषण नाद दीपमाला के सत्य सन्देशों को कानों तक आने नहीं देते। मकानों की, वस्त्रों की तथा आभूषणों की चकाचौंध में दीपमाला की आत्मा के दर्शन नहीं किये जाते।

दीपमाला की वास्तविकता—

आप मिठाई खा रहे हैं, पास में एक निर्धन बालक आप की ओर ललचाई आंखों से देख रहा है, अपमान का विष पीकर भी आप की ओर हाथ पसारता है, गिड़गिड़ाता है, आंखों में आंसू भर लाता है, फिर भी यदि आप उसे झिड़क देते हैं, उस असहाय बालक के अरमानों को आग लगा देते हैं, तो विश्वास रखिये दीपमाला आप पर कभी प्रसन्न नहीं होगी, दीपमाला की जगदम्बा आप से रूठ जाएगी। आप जब उसके आगे हाथ पसारेंगे तो वह आपको भी झिड़क देगी, आपकी झोली में कुछ न डालेगी। दीपमाला के दरबार से आपको भी खाली ही लौटना पड़ेगा। दीपमाला को प्रसन्न करने क कामना करने वालो ! यदि दीपमाला को प्रसन्न करना चाहते हो, उसे मनाना चाहते हो तो ग़रीबों के बच्चों को भूखे मत मरने दो, विधवाओं के कलेजे के टुकड़ों को सड़कों पर मत सड़ने दो। अपनी खुशी में उन्हें भी सम्मिलित करने का यत्न करो। इन स्व-पर कल्याणकारी कार्यों से बढ़ कर दीपमाला को मनाने का कोई अन्य मार्ग नहीं है।

अब अन्धकार का युग लद गया है। इस उन्नत युग में हमें सम्भलना चाहिये और पर्वों के मूल हार्द को समझकर उस में निहित आलोक से अपने जीवनाकाश को आलोकित करना चाहिए। तभी यह महान पुनीत दीपमाला पर्व हमारे

भविष्य को उज्ज्वल और समुज्ज्वल बनाने में सफल हो सकेगा।

दीपमाला मानव को सच्चा मानव बनाने आती है, पाशविक वृत्तियों को मिटाकर मानवता का मंगलमय महा-पाठ पढ़ाती है। स्वार्थपरायणता की आग पर परमार्थ का जल डालने आती है, अपने निर्धन और असहाय पड़ौसियों को तथा निराश एवं हतोत्साह मानव जीवन को गले लगाने का प्रेम-भरा सन्देश सुनाने आती है।

दीपमाला महापर्व की महिमा कहां तक कहता चला जाऊँ? यह तो महान पर्व है। उसके अमर सन्देशों की महिमा का पार नहीं पाया जा सकता। उसकी विराट महत्ता को शब्दों की सीमित रेखाओं में सीमित नहीं किया जा सकता।

दीपमाला और राष्ट्रियता—

दीपमाला पर्व की पुण्य रात्रि मंगल--मूर्ति भगवान महावीर के निर्वाण और उनके प्रधान अन्तेवासी श्री इन्द्रभूति गौतम स्वामी के केवल-ज्ञान के दिव्य आलोक की परिचायिका अथच संसूचिका रात्रि है। इस रात्रि में भगवान् महावीर ने निर्वाणलाभ किया और श्री गौतम स्वामी ने केवल-ज्ञान की लोकोत्तर ज्योति प्राप्त कर अरिहन्त पद उपलब्ध किया। यह तथ्य प्रस्तुत निबन्ध में निवेदन किया जा चुका है। अब दीप-माला की राष्ट्रिय, सामाजिक तथा पारिवारिक उपादेयता एवं उपयोगिता के संम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत किये जाएँगे।

लोग पूछते हैं—दीपमाला पर्व व्यष्टि और समष्टि के उत्थान में क्या सहयोग प्रदान करता है? व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के जीवन–निर्माण में इस पर्व की क्या उप-

योगिता है ? मानव जगत् की सुख-शान्ति में यह पर्व किस प्रकार सहकारी प्रमाणित होता है ? मानव को महामानव बनाने के लिए क्या प्रेरणा प्रदान करता है ? दीपमाला पर्व मात्र आध्यात्मिक पर्व है या उसका समाज और राष्ट्र के साथ भी कुछ सम्बन्ध है ? प्रस्तुत प्रकरण में इन सब प्रश्नों के समाधान का प्रयत्न किया जायेगा।

दीपमाला की प्रेरणा—

दीपमाला एक आध्यात्मिक पर्व है।* इस विषय की चर्चा

---

*पर्व दो प्रकार के होते हैं - लौकिक अर्थात् सांसारिक और अलौकिक अर्थात् आध्यात्मिक। जिस पर्व में भौतिकता की प्रधानता हो, सांसारिक भावों का पोषण हो, खान-पान की स्वादिष्ट सामग्री जुटाई जाती हो; नृत्य-संगीत का आनन्द लिया जाता हो, यथेच्छ मनोविनोद किया जाता हो, वह लौकिक पर्व है। अलौकिक पर्व में सभी प्रवृत्तियाँ आध्यात्मिकता के नेतृत्व में होती हैं। इस में जप, तप, त्याग, वैराग्य और आत्म-चिन्तन की प्रधानता होती है। सांसारिक आमोद-प्रमोद को कोई स्थान नहीं होता।

जैन दृष्टि से दीपमाला अलौकिक पर्व है। सांसारिक राग-रंग का इससे कोई सम्बन्ध नहीं हैं। किन्तु आज इस पर्व के अवसर पर लक्ष्मी का पूजन किया जाता है, मिष्टान्न खाये जाते हैं, आतिशबाज़ी जलाई जाती है, अतएव यह पर्व जैन दृष्टि से अपनी अलौकिकता खो बैठा है। ऊपर-ऊपर से यह लौकिक पर्व ही बन गया है, किन्तु इसके वास्तविक मूल रूप को यदि देखा जाय तो यह निस्सन्देह अलौकिक पर्व है।

पहले की जा चुकी है । दीपमाला का वास्तविक स्वरूप जब हमारे सामने आता है तो निस्सन्देह यह मानना पड़ता है कि यह पर्व आध्यात्मिक होने के साथ ही साथ एक राष्ट्रीय पर्व भी है। यह जहां मानव को आध्यात्मिक प्रकाश पुंज प्राप्त कर लेने की पवित्र प्रेरणा प्रदान करता है, वहां राष्ट्रियभाव का भी संचार करता है ।

मनुष्य यदि ग्राम का वासी है तो उसे यह सभ्य और प्रामाणिक ग्रामीण बनकर रहने की प्रेरणा देता है और यदि नागरिक है तो उसे आचार, विचार, आहार और व्यवहार की दृष्टि से सुसंस्कृत और पवित्र रहकर उज्ज्वल जीवन व्यतीत करने को प्रेरित करता है ।

नगरों का समूह प्रान्त है और प्रान्तों की इकाई राष्ट्र कहलाती है । ग्रामों और नगरों की प्रामाणिकता प्रान्त की प्रामाणिकता है, और प्रान्तों की प्रामाणिकता से राष्ट्र प्रामाणिक बन जाता है। इस प्रकार ग्राम्य, नागरिक और प्रान्तीय मानव जीवन का निर्माण ही राष्ट्र का निर्माण है । जिस पर्व से ग्राम्य, नागरिक और प्रान्तीय जीवन का निर्माण होता है, वह स्वतः राष्ट्रीय पर्व बन जाता है ।

दीपमाला पर्व का उद्गम और स्वरूप आचार, विचार, आहार और व्यवहार की दृष्टि से ग्राम्य, नगर तथा प्रान्त के मानव जीवन को प्रामाणिक, सात्त्विक और उन्नत बनाने की प्रेरणा देता है, उसे आध्यात्मिक उच्चता की चोटियों के महा-मन्दिर पर ले जाने की ओर संकेत करता है, फलतः वह आध्यात्मिक पर्व होने के साथ-साथ राष्ट्रिय पर्व भी है । उसकी राष्ट्रियता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता ।

दीपमाला पर्व ग्राम्य, नागरिक और प्रान्तीय जीवन को सात्विक और प्रामाणिक बनाने की प्रेरणा किस प्रकार प्रदान करता है ?और किस प्रकार जीवन में राष्ट्रियता का संचार करता है। ? इसका उत्तर नीचे की पंक्तियों में पढ़िए।

भाव-प्रकाश का प्रतीक दीपमाला—

दीपमाला पर्व के उपलक्ष्य में किया गया दीपकों का प्रकाश भगवान महावीर के भा-मण्डल का पुण्य प्रतीक है। भा-मण्डल एक प्रकार का गोलाकर प्रकाशपुंज होता है, जो महान् अध्यात्मनिष्ठ लोकोत्तर तेजस्वी महापुरुष के मस्तक के पीछे अवस्थित रहता है। भा-मण्डल का उद्भव आत्मसाधना के द्वारा होता है। अहिंसा, सत्य, जप, तप, त्याग, वैराग्य आदि पवित्र अनुष्ठानों की दृढ़ता-पूर्वक परिपालना करने से भामण्डल का आविर्भाव होता है। भामण्डल जीवन की आध्यात्मिक तेजस्विता का संसूचक है। जिसके पीछे भामण्डल है, समझना चाहिये कि वहां अहिंसा भगवती विद्यमान है और सत्य भगवान सानन्द विहार कर रहे हैं। वहां ज्ञान का प्रखर आलोक सदा जगमगाता रहता है और द्रव्य एवं भाव अन्धकार का चिह्न भी नहीं है। ब्रह्मज्ञान की उस महाज्योति में अखिल विश्व हस्तामलक की भाँति उद्भासित हो रहा है। वहाँ जीवन गत समस्त विकार नष्ट हो चुके हैं और जीवन शंख की तरह निर्मल और कमल की भाँति निर्लेप बन गया है।

भामण्डल—

दीपकों का प्रकाश भामण्डल का अनुकरण है, नकल है। सच्चा भामण्डल तो अहिंसा और सत्य की विराट साधना की

चरम परिणति है। अहिंसा और सत्य जब पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं तो आत्मा का अन्तर्हित तेज अपने नैसर्गिक रूप में निखर उठता है, चमकने लगता है और ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह आत्मिक तेज आत्मा में समा नहीं रहा है। इसी कारण बाहर निकल कर प्रभामण्डल के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है! इस प्रकार वह भामण्डल अपरिमित आन्तरिक तेज की विद्यमानता का साक्षी बन जाता है।

जो मनुष्य भामण्डल को प्राप्त करने का अभिलाषी है, और जिसे भामण्डल से मंडित होने की लालसा है वह उसे अवश्य प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक आत्मा में उसे प्राप्त कर लेने की शक्ति विद्यमान है। बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि प्रत्येक आत्मा में स्वाभाविक रूप से भामण्डल विद्यमान ही है, किन्तु विकारजनित मलीनता ने उसे आच्छादित कर रखा है। मनुष्य के हाथ की बात है कि वह आत्मशोधक सामग्री जुटाए, अपने विकारों को दूर करे और उस अनिर्वचनीय आलोकपुंज को विशुद्ध रूप में प्रकट करे।

जीवननिर्मात्री सामग्री को जुटाये बिना जीवननिर्माण का स्वप्न साकार नहीं हो सकता और जीवननिर्माण के बिना भामण्डल की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतएव भामण्डल के अभिलाषी मानव को अहिंसा, सत्य, त्याग, वैराग्य आदि के राजपथ पर अग्रसर होना होगा।

दीपकों का द्रव्य प्रकाश यदि भामण्डल अर्थात् भाव-प्रकाश की प्राप्ति का पथ-प्रदर्शक बन गया, मानव ने मानवता के मन्दिर को उपलब्ध कर ईर्षा-द्वेष आदि अपने जीवन-विकारों को नष्ट कर लिया तो समझ लीजिए कि दीपमाला मनाने का ध्येय सफल हो गया।

भामण्डल की प्रेरणा का परिणाम—

जिसने भावप्रकाश को प्राप्त करने की प्रेरणा प्राप्त कर ली है, वह उसके कारण-भूत अहिंसा, सत्य आदि पुनीत सिद्धान्तों को अपने जीवन-व्यवहार में व्यवहृत करने का प्रयत्न करता है, वह सत्य को भगवान् समझ कर मनसा, वाचा और कर्मणा उसी की आराधना करता है। जीवन के प्रत्येक व्यवहार को सत्य की ही कसौटी पर कसता है और सत्य के आलोक में ही अपनी जीवन-गाड़ी चलाने का प्रयत्न करता है। अहिंसा उस की रग-रग में व्याप्त हो जाती है। उसके द्वारा किसी को बाधा नहीं हो सकती, पीड़ा नहीं पहुँच सकती। वह स्वयं किसी को सताता नहीं, प्रत्युत दूसरों द्वारा सताए हुए का संरक्षण करता है। ईर्षा-द्वेष, वैर-विरोध आदि विकारों से विरत हो जाता है। उसका प्रत्येक पग व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र में शान्ति की स्थापना के लिए आगे बढ़ता है। वह भूल कर भी कोई काम ऐसा नहीं करता जिससे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय हित की क्षति होती हो या उसका अपयश हो। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति इसी ध्येय से होती है कि मानव मानवता को अपनाएँ, परिवार फलें-फूलें, समाज दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करे और राष्ट्र समृद्धिशाली, सशक्त और तेजस्वी बने, उसमें आचार और विचार की पवित्रता का प्रादुर्भाव हो तथा सर्वत्र प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा हो।

भावप्रकाश प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति जानता है कि उसे प्राप्त कर लेना कोई बच्चों का खेल नहीं। उसे पाने के लिए प्राणों की बाज़ी लगानी पड़ती है। मन की उच्छृंखलता और उद्दण्डता समाप्त करनी होती है। वाणी में अमृत की

मधुरता घोलनी पड़ती है। हाथों–पैरों तथा शरीर के अन्यान्य अवयवों का सतर्कता के साथ सदुपयोग करना होता है। पर का अनिष्ट करने वाला और किसी को व्यथित तथा पीड़ित करने वाला व्यक्ति उस भाव-प्रकाश को प्राप्त नहीं कर सकता।

भाव-प्रकाश के कारणभूत अहिंसा, सत्य आदि सिद्धांतों को जिसने अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया है, वह वस्तुतः महान् बन जाता है। जनसमाज में वह सर्वत्र आदृत और सम्मानित होता है तथा जगत् उसके मार्ग में पलकें बिछा देता है। जहां वह बैठता है, शांति की वर्षा होने लगती है। वैर-विरोध और ईर्षा-द्वेष का दावानल शान्त हो जाता है। संसार का घोर नास्तिक भी उसके चरण चूमने को लालायित हो उठता है। वह जहाँ पहुँच जाता है, लोग वाह–वाह की ध्वनि से उसका अभिनन्दन करते हैं और उसके दर्शन करके अपने सौभाग्य की सराहना करते हैं। उस पुरुष के जीवन में भगवान् राम की मर्यादा, त्रिखण्डाधिपति कृष्ण के अनासक्ति योग और भगवान् महावीर के अहिंसावाद की पावनतम त्रिवेणी का संगम दृष्टिगोचर होता है। वह परिवार का भूषण, समाज का शृंगार और राष्ट्र का अनमोल वैभव समझा जाता है।

पर्व की राष्ट्रियता—

आज सारे संसार में एक बड़ी भ्रमपूर्ण धारणा फैल रही है, उस धारणा के अनुसार व्यक्ति नगण्य है, उपेक्षणीय है और एक मात्र समाज को ही सम्पूर्ण महत्त्व प्राप्त है। इसी धारणा के कारण लोग व्यक्ति (आत्मा) को भूल रहे हैं और समष्टि को ही सब कुछ समझ रहे हैं। परिणाम यह हो गया है

कि लोग व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता की ओर ध्यान नहीं देते। उन्हें कौन समझाए कि व्यक्तिगत जीवन को पावन बनाये बिना सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन का उत्थान संभव नहीं है।

व्यक्तियों से परिवार बनता है और परिवारों से समाज की रचना होती है। नगरों से प्रान्त और प्रान्तों से राष्ट्र का प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार व्यक्ति ही राष्ट्र का मूल है, राष्ट्र का जीवन है। राष्ट्र की उन्नति और अवनति का आधार व्यक्ति है। व्यक्ति यदि सुशील है, सदाचारी है, कर्त्तव्यपरायण है तो राष्ट्र पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। व्यक्ति राष्ट्र का एक अंग है, अतएव व्यक्ति का सुधार राष्ट्र के एक अंग का सुधार है। और व्यक्ति का बिगाड़ राष्ट्र के एक अंग का बिगाड़ है। मगर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्र का एक अंग समूचे राष्ट्र से अभिन्न है, अतएव उसके उत्थान और पतन का प्रभाव समूचे राष्ट्र पर पड़े बिना नहीं रहता।

दीपमाला पर्व द्रव्य-प्रकाश के माध्यम से व्यक्ति को भाव-प्रकाश प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। जब व्यक्ति अपने आपको भाव-आलोक से आलोकित कर लेता है तो उसके आन्तरिक विकार दूर हो जाते हैं और वह सच्चा एवं पवित्र मानव बन जाता है। उसकी पवित्रता परिवारों को ऊंचा उठाती है और परिवारों की ऊँचाई से समाज ऊँचा उठ जाता है। समाज की ऊँचाई राष्ट्र के उत्थान की आधारशिला बनकर अन्ततः समष्टिगत जीवन को उन्नत और पवित्र बना देती है।

इस विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि दीपमाला पर्व आध्यात्मिक पर्व होने के साथ-साथ एक राष्ट्रीय पर्व भी है, क्योंकि उसके आलोक में समग्र राष्ट्र का उत्थान निहित है,

समस्त राष्ट्र उस की सत्प्रेरणा से नव चेतना और नव स्फूर्ति को प्राप्त करता है।

एक भ्रमपूर्ण धारणा का निराकरण—

आज राजनीति एक बवंडर की तरह हमारे जीवन पर बुरी तरह छा गई है। जहां देखो, राजनीति की ही चर्चा है। राजनीति की ही महत्ता है। साधारण राजनीतिज्ञ को जो सम्मान मिलता है, वह बड़े से बड़े विद्वान् वाग्मी और धर्म-परायण पुरुष को भी नहीं मिलता। इसी कारण संकीर्ण विचार वाले कुछ लोग समझते हैं कि किसी राजनीतिक घटना का स्मृति-दिवस ही राष्ट्रिय पर्व कहला सकता है, किन्तु हमें भूल नहीं जाना चाहिए कि राष्ट्र के विकास का आधार राजनीति नहीं, धर्मनीति है। धर्मनीति-विहीन राष्ट्र अधिक काल तक खड़ा नहीं रह सकता। वह शीघ्र ही लड़खड़ा कर गिर पड़ता है।

राष्ट्रिय पर्व की कसौटी—

वस्तुतः राष्ट्रिय पर्व वह है जो राष्ट्र को उत्थान की बलवती प्रेरणा प्रदान करता हो, जिससे राष्ट्र में नवजीवन का संचार हो, जो राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की ऊंचाइयाँ प्राप्त करने के लिए आकर्षित करे और इस प्रकार राष्ट्र के सर्वांगीण जीवन को उन्नत बनाने का आदर्श उपस्थित करे। ऐसा राष्ट्र-पर्व किसी महान् राजनीतिज्ञ के जन्म-मरण का भी दिवस हो सकता और किसी महान अध्यात्मनिष्ठ महापुरुष के जीवन या निर्वाण से सम्बन्धित भी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि जिस घटना से समग्र राष्ट्र में चेतना, जागृति और स्फूर्ति का संचार होता है एवं जो राष्ट्र को जीवन के परमोन्नत आदर्शों

की ओर इंगित करती है, उस घटना की स्मृति का दिवस राष्ट्रिय पर्व का गौरव पाता है।

उपसंहार—

भगवान् महावीर इस देश के अद्वितीय महापुरुष थे। उनका समग्र जीवन अहिंसा, सत्य, संयम और तप का जाज्वल्यमान प्रतीक था। उन्होंने अपने आदर्श जीवन-व्यवहार और उपदेश के द्वारा देश की विविध भ्रांतिपूर्ण धारणाओं का निर्मूलन किया। देश को आचार और विचार के क्षेत्र में बहुमूल्य देन दी, जिसके आधार पर आज अढ़ाई हजार वर्षों के बाद भी यह देश अभिमान करता है। उन्हीं के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का अनुकरण करके यह देश सारे विश्व में गौरव का पात्र बन रहा है। वह राष्ट्र की असाधारण विश्वभूति हैं, उनके जीवन और उपदेशों ने राष्ट्र के निर्माण में बहुमूल्य योग प्रदान किया है। ऐसी स्थिति में भगवान महावीर का निर्वाण-दिवस यदि राष्ट्रिय पर्व न माना जाय तो फिर राष्ट्रिय पर्व क्या होगा?

आशा है इस स्पष्टीकरण से पाठक भली-भाँति समझ सकेंगे कि दीपमाला पर्व आध्यात्मिक होने के साथ ही साथ एक महान् राष्ट्रिय पर्व भी है। जो समग्र राष्ट्र को आध्यात्मिकता, अहिंसा, सत्य, प्रामाणिकता, अनेकान्त दृष्टि आदि सात्त्विक भावनाओं की स्मृति दिलाता है और राष्ट्र को जीवन के परम सत्य की ओर ले जाने की पवित्र प्रेरणा करता है।

वीर-निर्वाण महापर्व

कार्तिकी अमावस्या की रात्रि 'दीपमाला' और 'वीर-निर्वाण-महापर्व' इन दो नामों से प्रख्यात है। दीपमाला के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। प्रस्तुत में वीर-निर्वाण महापर्व को लेकर कुछ बातें आपके सामने रखी जाएंगी। कार्तिक अमावस्या की पुण्य रात्रि में भगवान् महावीर का निर्वाण प्राप्त हुआ। वे निराकार, निर्विकार और निरंजन दशा को प्राप्त हुए। मध्यलोक से अनन्त ज्योति का पुंज तिरोहित हो गया। उनका लोकोत्तर आत्म-तेज उन्हीं के साथ चला गया। उसके चले जाने पर हस्तिपाल राजा की पौषधशाला* ही निबिड़ अन्धकार से आच्छादित नहीं हुई प्रत्युत पौषधशाला में उपस्थित सहस्रों मानवों और अठारह देशों के राजाओं के हृदयों में भी अंधकार की शून्यता व्याप गई।

'डूबते को तिनके का सहारा' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए उन्होंने रत्नों का प्रकाश करके सर्वत्र प्रसृत तिमिर के प्रतीकार का प्रयत्न किया। धीरे-धीरे उस प्रयत्न का अनुकरण समग्र देश में किया गया और कार्तिकी अमावस्या के दिन सारे देश में दीपावली जगमगाने लगी। दीपकों का प्रकाश करके भगवान् महावीर का पुण्य निर्वाण दिवस सर्वत्र मनाया जाने

---

*भगवान महावीर का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी महाराज हस्तिपाल की पौषधशाला में हुआ था, आदि बातों का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तिका के पहले निबन्ध के आरम्भ में किया जा चुका है।

लगा। इसलिए यह पर्व "वीर–निर्वाण" के नाम से प्रसिद्ध हो गया। काल की अनेकानेक घाटियाँ पार करता हुआ वही 'वीर-निर्वाण-दिवस' आज भी मनाया जाता है। निर्वाण-दिवस मनाकर भारतीय प्रजा ज्ञात और अज्ञात रूप में अहिंसा-सत्य के महान् संदेश-वाहक भगवान् महावीर के चरणों में अपनी भक्ति-पूर्ण श्रद्धांजलि समर्पित करती है।

भगवान् महावीर के निर्वाण-दिवस को मनाने का मुख्य उद्देश्य है—उस आध्यामिक प्रकाश को प्राप्त करना जिसे प्राप्त करके भगवान् कृतकृत्य बने थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस प्रकाश की प्राप्ति भगवान के जीवन को भली-भांति समझे बिना संभव नहीं है। भगवान के जीवन के दो पहलू हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। जीवनगत घटनाएँ जीवन का बाह्य पहलू है और उनके उपदेशों से प्रतिफलित होने वाले अन्तस्तत्त्व को पहचानना आन्तरिक। इन दोनों पहलुओं से जीवन का परिचय प्राप्त करना ही भगवान् के जीवन को समझना है। अतएव प्रस्तुत निबन्ध मे संक्षेप में भगवान् महावीर के जीवन के दोनों पहलुओं का दिग्दर्शन कराया जाएगा।

भगवान् का संक्षिप्त जीवन-परिचय—

उस युग के महाराज तथा गणराज्य के अधिपति चेटक की बहिन थीं—त्रिशला देवी। उनका विवाह ज्ञात वंशीय क्षत्रिय-कुलभूषण महाराज सिद्धार्थ के साथ हुआ। जैनशास्त्रों में महाराज सिद्धार्थ का उल्लेख 'सिद्धत्थे खत्तिए' और 'सिद्धत्थे राया' के नाम से उपलब्ध होता है।

ईसवी ६६८ वर्ष पूर्व, ऋतुराज बसन्त जब अपने नव-यौवन की अंगड़ाई ले रहा था. नैसर्गिक सुषमा अपना शृंगार

सजा रही थी, प्रकृति प्रसन्न थी और जन-जन के मानस में अपूर्व उल्लास और आह्लाद उत्पन्न कर रही थी, तब चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर ने अपने जन्म से इस पृथ्वी को पावन किया। उनका नाम वर्धमान रखा गया।

बाल्य काल—

उन के बाल्यकाल की अनेकानेक घटनाएँ जैन ग्रन्थों में उल्लिखित हैं, जिन से प्रतीत होता है कि वर्द्धमान 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की उक्ति के अनुसार बचपन से ही अतीव बुद्धिमान्, विशिष्ट ज्ञानवान्, धीर, वीर और साहसी थे। उनके माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे अतएव अहिंसा, दया, करुणा और संयमशीलता के वातावरण में उन का लालन-पालन हुआ।

वर्धमान में एक बड़ी जन्मजात विशेषता थी अलिप्तता-अनासक्ति की। राज-प्रासाद में रहते हुए भी और उत्कृष्ट भोग-सामग्री की प्रचुरता होने पर भी वे समस्त भोग पदार्थों में अनासक्त रहते थे। उनकी अन्तरात्मा में एक असाधारण प्रकाश था, एक दिव्य ज्योति थी, जो उन के मानस एक निराले ही पथ का प्रदर्शन करती रहती थी।

वर्धमान स्वभाव से ही अत्यन्त गम्भीर और सात्त्विक थे। उनकी देह अनुपम स्वर्णगौर अतिशय प्राणवान थी। उनका आनन ओजस्वी, ललाट तेजस्वी और वक्षस्थल चेतोहर तथा विशाल था। सात हाथ ऊंचा उनका सम्पूर्ण शरीर असाधारण सौन्दर्य की पुरुषाकार प्रतिमा के समान था, फिर भी उनका मानस वैराग्य के रंग में रंगा हुआ था। वह कभी-कभी अतिशय गम्भीर प्रतीत होते, मानों संसार के दुःखदावानल से

पार होने की चिन्ता में हों। इठलाता हुआ यौवन भी उन्हें भोगों में नहीं फंसा सका। उनकी शक्तियाँ वस्तुतः आत्माभिमुखी थीं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार वह अविवाहित थे और श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार विवाहित हो कर भी वे कभी भोगों में आसक्त नहीं हुए।

विरक्ति—

वर्धमान के माता-पिता का जब स्वर्गवास हुआ, उस समय उनकी अवस्था २८ वर्ष की थी। विरक्ति के जन्म--जात संस्कार संभवतः इस घटना से उभर आये और उन्होंने अपने ज्येष्ठ बन्धु नन्दिवर्धन के समक्ष दीक्षित होने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया। नन्दिवर्धन माता-पिता के वियोग से व्याकुल थे ही, वर्धमान के इस प्रस्ताव से उनकी मनोव्यथा की सीमा न रही। नन्दिवर्धन ने उनसे कहा—बन्धु! जले पर नमक मत छिड़को। माता पिता के विछोह की व्यथा ही दुस्सह लग रही है, उस पर तुम भी मुझे निराधार छोड़ देने की बात कहते हो। मैं इतनी व्यथा नहीं सह सकूँगा भाई!

भगवान् वर्धमान अतिशय नम्र, सौम्य, विनीत और दयालु थे। किसी को पीड़ा उपजाना तो दूर रहा, वे किसी को म्लानमुख भी नहीं देख सकते थे। नन्दिवर्धन के व्यथा-निवेदन से उन्होंने अपने संकल्प में परिवर्तन तो नहीं किया, मगर उसे दो वर्ष के लिए स्थगित अवश्य कर दिया। इन दो वर्षों में वे गृहस्थ योगी की भाँति रहते रहे।

आखिर तीस वर्ष की भरी जवानी में उन्होंने गृहत्याग किया। वह बुद्ध की भाँति पारिवारिक जनों को सोता छोड़ कर रात्रि में चुपके से नहीं निकले, प्रत्युत कुटुम्बियों से अनुमति लेकर त्यागी बने।

साधना—

यहीं से वर्धमान स्वामी का साधक जीवन आरम्भ होता है। बारह वर्ष, पाँच मांस और पन्द्रह दिनों तक कठोर साधना करने के पश्चात् उन्हें केवल-ज्ञान की प्राप्ति हुई।

इस लम्बे साधना-काल का विस्तृत वर्णन जैन शास्त्रों में उपलब्ध होता है। उससे प्रतीत होता है कि वर्धमान की साधना अपूर्व और अद्भुत थी। अढ़ाई हज़ार वर्षों के बाद आज भी जब हम उनके तीव्रतर तपश्चरण का वृत्तान्त पढ़ते हैं और सुनते हैं तो विस्मय से रौंगटे खड़े हो जाते हैं। इस विशाल भूतल पर असंख्य महापुरुष, अवतार कहे जाने वाले विशिष्ट पुरुष और तीर्थंकर उत्पन्न हुए, मगर इतनी कठिन तपस्या करने वाला महापुरुष अतीत के उपलब्ध इतिहास ने पैदा नहीं किया। भयानक से भयानक यातनाओं में भी उन्होंने अपरिमित धैर्य, साहस एवं सहिष्णुता का आदर्श उपस्थित किया। गोपाल, शूलपाणि यक्ष, संगम देव, चण्ड कौशिक सर्प, गोशालक और लाढ़ देश के अनार्य प्रजाजनों द्वारा पहुंचाई हुई पीड़ाएँ भगवान् की अनन्त क्षमता और सहिष्णुता के ज्वलन्त निदर्शन हैं। रोमांचकारिणी उत्पीड़ाओं के समय भगवान् हिमालय की भाँति अडिग, अडोल और अकम्प रहे। तपश्चरण में असाधारण वीर्य प्रकट करने के कारण ही वे 'महावीर' के सार्थक नाम से विख्यात हुए।

आगत कष्टों, परीषहों और पीड़ाओं को दृढ़तापूर्वक सहर्ष सहन करने वाला पुरुष वीर कहलाता है और भगवान आत्मशुद्धि के लिए कभी-कभी कष्टों को निमन्त्रण देकर बुलाते, उन के साथ संघर्ष करते और विजयी बनते थे। इसी कारण वह अतिवीर और महावीर कहलाए।

कितनी अद्भुत बात है कि अपने साढ़े बारह वर्ष के तपस्याकाल में भगवान ने एक बार तो लगातार छह महीना जितना लम्बा काल निराहार और निर्जल रह कर बिता दिया। इस साढ़े बारह वर्ष के दीर्घ-काल में उन्होंने कुल मिलाकर ३४९ दिन भोजन किया और शेष दिनों में उपवास ही रखा। और यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं कि उन्होंने एक अपवाद के सिवाय कभी निद्रा भी नहीं ली। जब नींद आने लगती तो वे थोड़ी देर चंक्रमण करके निद्रा भगा देते और सदैव जागृत रहने का ही प्रयत्न करते रहते थे। इससे ज्ञात होता है कि अभ्यास द्वारा मनुष्य निद्रा पर विजय प्राप्त कर सकता है।

सिद्धि—

सर्वोत्कृष्ट साधना के फलस्वरूप भगवान् महावीर को सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक सम्पत्ति की उपलब्धि हुई। उन्हें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी पद प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् भगवान् ने तत्त्व के स्वरूप तथा मोक्षमार्ग का प्रतिपादन किया। तीस वर्ष तक स्थान–स्थान पर परिभ्रमण करके अन्त में पावापुरी पधारे। मोक्ष की घड़ी निकट थी, किन्तु वे विश्व को अपनी पुण्यमयी, कल्याणकारिणी और परमपावनी वाग्धारा से आप्लावित कर रहे थे। आखिर कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में वे समस्त कर्मों से विनिर्मुक्त, अशरीर-सिद्ध हो गये।

जीवन महिमा——

भगवान् महावीर विश्व के अद्वितीय क्रान्तिकारी महापुरुष थे। उनकी क्रान्ति किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं थी। उन्होंने सर्वतोमुखी क्रान्ति का मन्त्र फूंका था। अध्यात्म, दर्शन, समाज, व्यवस्था, यहाँ तक कि भाषा के क्षेत्र में भी उनकी देन

बहुमूल्य है। उन्होंने तत्कालीन तापसों को तपस्या के बाह्य रूप के बदले बाह्याभ्यन्तर रूप प्रदान किया। तप के स्वरूप को व्यापकता प्रदान की। पारस्परिक खण्डन-मण्डन में निरत दार्शनिकों को अनेकान्तवाद का महामन्त्र दिया। सद्गुणों की अवगणना करने वाले जन्मगत जातिवाद पर कठोर प्रहार कर गुण-कर्म के आधार पर जाति व्यवस्था का प्रतिपादन किया। नारियों की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखा और भूले हुए भारत को साध्वीसंघ की अनमोल निधि देकर नारी-जगत की प्रतिष्ठा का पूर्णतया संरक्षण किया। यज्ञ के नाम पर पशुओं के प्राणों से खिलवाड़ करने वाले स्वर्गकामियों को स्वर्ग का सच्चा मार्ग बतलाया। नदी-समुद्रों में स्नान करने से या पाषाणों की राशि इकट्ठी करने से धर्म समझने की लोकमूढ़ता का निरास किया। लोक भाषा को अपने उपदेश का माध्यम बना कर पण्डितों के भाषाभिमान को समाप्त किया। संक्षेप में यह कि भगवान महावीर स्वामी ने समाज के समग्र मापदण्ड बदल दिये और सम्पूर्ण जीवन-दृष्टि में एक भव्य और दिव्य नूतनता उत्पन्न कर दी।*

भगवान् महावीर का उपदेशामृत—

ऊपर की पंक्तियों में भगवान् के जीवन का बाह्य पहलू बतलाया जा चुका है। दूसरे आन्तरिक पहलू को समझने के लिए भगवान् की कल्याणी वाणी को और उनके सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। इसीलिए सर्वप्रथम भगवान की वाणी के कुछ अंश इस प्रकरण में दिये जा रहे हैं।

---

*पण्डित श्री शोभा चन्द्र जी भारिल्ल द्वारा सम्पादित "जैन धर्म" नामक पुस्तक से कुछ परिवर्तन के साथ साभार उद्धृत।

१- धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

(दशवै० अ० १-१)

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है ।

(कौन सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तप ।

जिस मनुष्य का मन धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

२- जरामरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥

(उत्तरा० अ० २३-६८)

जरा और मरण के वेग वाले प्रवाह में बहते हुए जीवों के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है, और उत्तम शरण है ।

३- अद्धाणं जो महन्तं तु, अप्पोहेओ पवज्जइ ।
गच्छन्तो सो दुही होइ, छुहा-तण्हाए पीडिओ ॥

(उत्तरा० अ० १६-१८)

जो पथिक बिना पाथेय लिये बड़े लम्बे मार्ग की यात्रा पर जाता है, वह आगे जाता हुआ भूख और प्यास से पीड़ित हो कर अत्यन्त दुःखी होता है ।

४- एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ ॥

(उत्तरा० अ० १६-१६)

और जो मनुष्य बिना धर्माचरण किये परलोक जाता है,

वह वहां विविध प्रकार की आधि–व्याधियों से पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होता है।

५– अद्धाणं जो महन्तं तु, सपाहेओ पवज्जइ ।
गच्छन्तो सो सुही होइ, छुहा-तण्हा-विवज्जिओ ॥
(उत्तरा० अ० १६–२०)

जो पथिक लम्बे मार्ग की यात्रा पर अपने साथ पाथेय लेकर जाता है, वह आगे जाता हुआ भूख और प्यास से तनिक भी पीड़ित न होकर अत्यन्त सुखी होता है।

६– एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो सुही होइ. अप्पकम्मे अवेयणे ॥
(उत्तरा० अ० १६–२१)

और जो मनुष्य यहां भली भाँति धर्म का आराधन कर के परलोक जाता है, वह वहां अल्पकर्मी तथा पीड़ा-रहित होकर अत्यन्त सुखी होता है।

७– जहा सागडियो जाणं, समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयइ ॥
(उत्तरा० अ० ५–१४)

जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझकर भी साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़कर विषम (ऊंचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़) मार्ग पर जाता है, वह गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।

८– एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गेव सोयइ ॥
(उत्त० अ० ५–१५)

उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य भी धर्म को छोड़कर, अधर्म को ग्रहण कर, अन्त में मृत्यु के मुँह में पड़कर जीवन की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।

९– जहा य तिन्नि वाणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया ।
एगोऽत्थ लहए लाभं, एगो मूलेण आगओ ॥
(उत्तर० अ० ७–१४)

तीन बनिये कुछ पूँजी लेकर धन कमाने घर से निकले। उन में से एक को लाभ हुआ, दूसरा अपनी मूल पूँजी ही ज्यों-की-त्यों बचा लाया—

१०– एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥
(उत्तरा० अ० ७–१५)

तीसरा अपनी गाँठ की पूँजी भी गवाँकर लौट आया। यह एक व्यावहारिक उपमा है, यही बात धर्म के सम्बन्ध में भी विचार लेनी चाहिये—

११– माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेएण जीवाणं, नरग-तिरिक्खत्तणं धुवं ॥
(उत्तरा० अ० ७–१६)

मनुष्यत्व मूल है—अर्थात्—मनुष्य से मनुष्य बनने वाला, मूल पूँजी को बचाने वाला है। देव जन्म पाना, लाभ उठाना है, और जो मनुष्य नरक तथा तिर्यक् गति को प्राप्त होता है, यह अपनी मूल पूँजी को भी गँवा देने वाला मूर्ख है।

१२– जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राईओ ॥

(उत्तरा० अ० १४–२४)

जो रात और दिन, एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं आते, जो मनुष्य अधर्म (पाप) करता है, उसके वे रात-दिन बिल्कुल निष्फल जाते हैं ।

१३– जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
धम्मं च कुणमास्स, सफला जन्ति राईओ ॥

(उत्तरा० अ० १४–२५)

जो रात-दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते, हैं वे फिर कभी वापस नहीं आते, जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात दिन सफल हो जाते हैं ।

१४– तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं ।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ॥

(दश० अ० ६–६)

भगवान् महावीर ने अठारह धर्म-स्थानों में सबसे पहला स्थान अहिंसा का बतलाया है ।

१५– सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयन्ति णं ॥

(दश० अ० ६–११)

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इसीलिये निर्ग्रन्थ (जैन मुनि) घोर प्राणि-वध का सर्वथा परित्याग करते हैं ।

१६- एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं ।
अहिंसा--समयं चेव, एयावन्तं वियाणिया ॥
(सूयगडांग सूत्र अ० ११-१०)

ज्ञानी होने का सार ही यह है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे । 'अहिंसा का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है'—मात्र इतना ही विज्ञान है ।

१७- समया सव्वभूएसु, सत्तु-मित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं ॥
(उत्तरा० अ० १६-२५)

संसार में प्रत्येक प्राणी के प्रति, फिर भले ही वह शत्रु हो या मित्र—समभाव रखना, तथा जीवन-पर्यन्त छोटी--मोटी सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना-वास्तव में बड़ा ही दुष्कर है ।

१८- अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूया, नो वि अन्नं वयावए ॥
(दश० अ० ६-१२)

अपने स्वार्थ के लिये अथवा दूसरों के लिए, क्रोध से अथवा भय से-किसी भी प्रसंग पर दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाला असत्य वचन न तो स्वयं बोले, न दूसरों से बुलवाए।

१६- दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुण्णं वियं जियं ।
अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं ॥
(दश० अ० ८-४६)

आत्मार्थी साधक को दृष्ट (सत्य), परिमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण, स्पष्ट, अनुभूत, वाचालता-रहित, और किसी को भी उद्विग्न न करने वाली वाणी बोलनी चाहिए ।

२०- तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥
(दश० अ० ७-११)

जो भाषा कठोर हो, दूसरों को दुःख पहुंचाने वाली हो, वह सत्य भी क्यों न हो, नहीं बोलनी चाहिये। क्योंकि उससे पाप का आस्रव होता है।

२१- चित्तमन्तमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दन्तसोहणमित्तं पि, उग्गहं से अजाइया ॥

२२- तं अप्पणा न गिण्हंति, नो वि गिण्हावए परं ।
अन्नं वा गिण्हमाणं पि, नाणुजाणंति संजया ॥
(दश० अ० ६-१४, १५)

सचेतन पदार्थ हो या अचेतन, अल्पमूल्य पदार्थ हो या बहुमूल्य, और तो क्या, दांत कुरेदने की सींक भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो उसकी आज्ञा के लिये बिना पूर्ण संयमी साधक न तो स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों को ग्रहण करने के लिये प्रेरित करते हैं, और न ग्रहण करने वालों का अनुमोदन ही करते हैं ।

२३- विरई अबंभचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा ।
उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं ॥
(उत्तरा० अ० १६-२८)

काम भोगों का रस जान लेने वाले के लिए अब्रह्मचर्य से विरक्त होना और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारण करना, बड़ा ही कठिन कार्य है।

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थीजणस्साऽऽरियज्झाणजुग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं ॥

(उत्तरा० अ० ३२-१५)

स्त्रियों को रागपूर्वक देखना, उनकी अभिलाषा करना, उनका चिन्तन करना, उनका कीर्तन करना, आदि ब्रह्मचारी पुरुष को कदापि नहीं करने चाहिएँ। ब्रह्मचर्य व्रत में सदा रत रहने की इच्छा रखने वाले पुरुषों के लिए यह नियम अत्यन्त हितकर हैं, और उत्तम ध्यान प्राप्त करने में सहायक हैं।

२५- **जहा दवग्गी पउरिन्धणे वणे,**
समारुओनोवसमं उवेइ ।
एविन्दियग्गी वि पगामभोइणो,
न बंभयारिस्स हियाय कस्सइ ॥

(उत्तरा० अ० ३२-११)

जैसे बहुत ज्यादा ईन्धन वाले जंगल में पवन से उत्तेजित दावाग्नि शान्त नहीं होती, उसी तरह मर्यादा से अधिक भोजन करने वाले ब्रह्मचारी की इन्द्रियाग्नि भी शांत नहीं होती। अधिक भोजन किसी को भी हितकर नहीं होता ।

२६- **कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं,**
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ।

जं काइयं माणसियं च किंचि,
तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरागो ॥
(उत्तरा० अ० ३२-१९)

देवताओं-सहित समस्त संसार के दुःख का मूल एक मात्र काम भोगों की वासना है. जो साधक इस सम्बन्ध में वीतराग हो जाता है, वह शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुःखों से छूट जाता है।

२७- देवदाणवगन्धव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बंभयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करेन्ति ते ॥
(उत्तरा० १६-१६)

जो मनुष्य इस भाँति दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे देव, दानव गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सब देव नमस्कार करते हैं।

२८- अत्थंगयंमि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए ।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए ॥
(दश० अ० ८-२८)

सूर्य के उदय होने से पहले और सूर्य के अस्त हो जाने के बाद निर्ग्रन्थ मुनि को सभी प्रकार के भोजन-पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए।

२९- सन्तिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ॥
(दश० अ० ६-२४)

संसार में बहुत से त्रस और स्थावर प्राणी बड़े ही सूक्ष्म

होते हैं वे रात्रि में देखे नहीं जा सकते। तो रात्रि में भोजन कैसे किया जा सकता है ?

३०– मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स,
खंधाउ पच्छा समुविन्ति साहा ।
साह-प्पसाहा विरुहन्ति पत्ता,
तओ से पुप्फं फलं रसोय ॥१॥

(दश० अ० ६ उ० २–१)

वृक्ष के मूल से सब से पहले स्कन्ध पैदा होता है, स्कन्ध के बाद शाखाएँ निकलती हैं। छोटी शाखाओं से दूसरी छोटी-छोटी शाखाएँ निकलती हैं। छोटी शाखाओं से पत्ते पैदा होते हैं। इसके बाद क्रमशः फूल, फल और रस उत्पन्न होते हैं।

३१– एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो ।
जेण किर्त्तिं सुयं सिग्घं, निस्सेसं चाभिगच्छइ ॥२॥

(दश० अ० ६ उ० २–२)

इसी भाँति धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम रस है। विनय के द्वारा ही मनुष्य बड़ी जल्दी शास्त्र-ज्ञान तथा कीर्ति संपादन करता है। अन्त में, निश्रेयस (मोक्ष) भी इसी के द्वारा प्राप्त होता है।

३२– अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भइ ।
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणाऽऽलस्सएण य ॥३॥

(उत्तरा० अ० ११–३)

आगे कहे जाने वाले पाँच कारणों से मनुष्य सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता—

अभिमान से, क्रोध से, प्रमाद से, कुष्ठ आदि रोग से, और आलस्य से ।

३३– अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चइ ।
नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥

३४– अप्पं च अहिक्खिवई, पबन्धं च न कुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो भयइ, सुयं लद्धुं न मज्जइ ॥

३५– न च पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पइ ।
अप्पियस्साऽवि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासइ ॥

३६– कलहडमरवज्जिए, बुद्धे अभि—जाइगे ।
हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चइ ॥
(उत्तरा० अ० ११–१०–१३)

नीचे के पन्द्रह कारणों से बुद्धिमान मनुष्य सुविनीत कहलाता है—उद्धत न हो--नम्र हो, चपल न हो--स्थिर हो । मायावी न हो-सरल हो, कुतूहली न हो-गम्भीर हो, किसी का तिरस्कार न करता हो, क्रोध को अधिक समय तक न रखता हो, शीघ्र ही शान्त हो जाता हो, अपने से मित्रता का व्यवहार रखने वालों के प्रति पूरी सद्भावना रखता हो, शास्त्रों के अध्ययन का गर्व न करता हो, मित्रों पर क्रोधित न होता हो, अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे भलाई ही करता हो, किसी प्रकार का झगड़ा फिसाद न करता हो, बुद्धिमान हो, अभिजात अर्थात् कुलीन हो, लज्जाशील हो, एकाग्र हो ।

३७– अभिक्खणं कोही भवइ, पबन्धं च पकुव्वइ ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धूण मज्जइ ॥

३८– अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पइ ।
सुप्पियस्साऽवि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं ॥
३९– पइण्णवादी दुहिले, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अचियत्ते, अविणीय त्ति वुच्चइ ॥
(उत्तरा० अ० ११–७–९)

जो बार-बार क्रोध करता है, जिसका क्रोध शीघ्र ही शांत नहीं होता, जो मित्रता रखने वालों का भी तिरस्कार करता है, जो शास्त्र पढ़कर गर्व करता है, जो दूसरों के दोषों को ही उखेड़ता रहता है, जो अपने मित्रों पर भी क्रुद्ध हो जाता है, जो अपने प्यारे से प्यारे मित्र की भी पीठ पीछे बुराई करता है, जो स्नेही जनों से भी द्रोह रखता है, जो अहंकारी है, जो लोभी है, जो इन्द्रियनिग्रही नहीं, जो सबको अप्रिय है, वह अविनीत कहलाता है ।

४०– चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥
(उत्तरा० अ० ३–१)

संसार में जीवों को इन चार श्रेष्ठ अंगों (जीवन-विकास के साधन) का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है—

मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ ।

४१– माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे निद्धुणे रयं ॥
(उत्तरा० अ० ३–११)

परन्तु जो तपस्वी मनुष्यत्व को पाकर, सद्धर्म का श्रवण

कर, उसपर श्रद्धा लाता है और तदनुसार पुरुषार्थ कर आस्रव रहित हो जाता है, वह अन्तरात्मा पर से कर्म-रज को झटक देता है।

४२– सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्त व पावए॥
(उत्तरा० अ० ३-१२)

जो मनुष्य निष्कपट एवं सरल होता है, उसी की आत्मा शुद्ध होती है। और जिसकी आत्मा शुद्ध होती है, उसी के पास धर्म ठहर सकता है। घी से सींची हुई अग्नि जिस प्रकार पूर्ण प्रकाश को पाती है, उसी प्रकार सरल और शुद्ध साधक ही निर्वाण को प्राप्त होता है।

४३– असंखयं जीवियमापमायए,
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं विजाणाहि जणे पमत्ते,
किं नु विहिंसा अजया गहिन्ति॥
(उत्तरा० अ० ४-१)

जीवन असंस्कृत है—अर्थात् एक बार टूट जाने के बाद फिर नहीं जुड़ता, अतः एक क्षण भी प्रमाद न करो।

प्रमाद, हिंसा और असंयम में अमूल्य यौवनकाल बिता देने के बाद जब वृद्धावस्था आयेगी, तब तुम्हारी कौन रक्षा करेगा—तब किसकी शरण लोगे?' यह खूब सोच-विचार लो।

४४– संसारमावन्न परस्स अट्ठा,
साहारणं जं च करेइ कम्मं।

कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले,
न बन्धवा बन्धवयं उवेन्ति ॥
(उत्तरा० अ० ४-४)

संसारी मनुष्य अपने प्रिय कुटुम्बियों के लिये बुरे से बुरे भी पाप-कर्म कर डालता है, पर जब उन के दुष्फल भोगने का समय आता है, तब अकेला ही दुःख भोगता है, कोई भी भाई-बन्धु उसका दुःख बंटाने वाला—सहायता पहुंचाने वाला नहीं होता ।

४५– दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं समयं गोयम ! मा पमाए ॥
(उत्तरा० अ० १०–१)

जैसे वृक्ष का पत्ता पतझड़ ऋतुकालिक रात्रि-समूह के बीत जाने के बाद पीला होकर गिर जाता है, वैसे ही मनुष्य जीवन नष्ट हो जाता है। इसलिए हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर ।

४६-- कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥
(उत्तरा० अ० १०–२)

जैसे ओस की बून्द कुशा की नोक पर थोड़ी देर तक ही ठहरी रहती है, उसी तरह मनुष्यों का जीवन भी अल्प है—शीघ्र ही नाश हो जाने वाला है। इसलिये हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर ।

४७-- इइ इत्तरियम्मि आऊए, जीवियए बहुपच्चवायए ।

विहुणाहि रयं पुरेकडं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

(उत्तरा० अ० १०-३)

अनेक प्रकार के विघ्नों से युक्त अत्यन्त अल्प आयु वाले इस मानव-जीवन में पूर्व संचित कर्मों की धूल को पूरी तरह पटक दे। इसके लिए हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

४८-- दुल्लहे खलु माणुसे भवे,
चिरकालेण वि सव्व पाणिणं ।
गाढा या विवाग कम्मुणो,
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

(उत्तरा० अ० १०-४)

इसलिए दीर्घकाल के बाद भी प्राणियों को मनुष्य-जन्म का मिलना बड़ा दुर्लभ है, क्योंकि कृत कर्मों के विपाक अत्यन्त प्रगाढ़ होते हैं। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

४९-- रागो य दोसो वि य कम्मबीयं,
कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति ।
कम्मं च जाइमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाइमरणं वयन्ति ॥

(उत्तरा० अ० ३२-७)

राग और द्वेष-दोनों कर्म के बीज हैं—अतः कर्म का उत्पादक मोह ही माना गया है। कर्म सिद्धान्त के अनुभवी लोग कहते हैं कि संसार में जन्म मरण का मूल कर्म है, और जन्म मरण-यही एक मात्र दुःख है।

५०-- कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥१॥
(दशा० अ० ८-४०)

अनिगृहीत क्रोध और मान, तथा प्रवर्द्धमान (बढ़ते हुए) माया और लोभ-ये चारों ही कुत्सित कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार वृक्ष की जड़ों को सींचते हैं ।

५१- कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥
(दशा० अ० ८-३८)

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है, और लोभ सभी सद्‌गुणों का नाश कर देता है।

५२- उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायमज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥
(दशा० अ० ८-३९)

शान्ति से क्रोध को मारे, नम्रता से अभिमान को जीते, सरलता से माया का नाश करे, और सन्तोष से लोभ को काबू में लाये ।

५३-- जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ ।
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं ॥
(उत्तरा० अ० ८-१७)

ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है। देखो न, पहले केवल दो मासे सुवर्ण की आवश्यकता थी, पर बाद में करोड़ों से भी पूरी न हो सकी।

५४-- सुवण्ण--रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया॥
(उत्तरा० अ० ६-४८)

चाँदी और सोने के कैलास के समान विशाल असंख्य पर्वत भी यदि पास में हों, तो भी लोभी मनुष्य की तृप्ति के लिये वे कुछ भी नहीं। कारण कि तृष्णा आकाश के समान अनन्त है।

५५-- खणमित्तसोक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥
(उत्तरा० अ० १४--१३)

काम-भोग क्षणमात्र सुख देने वाले हैं चिर काल तक दुःख देने वाले हैं। उन में सुख बहुत थोड़ा है, अत्यधिक दुःख ही दुःख है। मोक्ष-सुख के वे भयंकर शत्रु हैं, अनर्थों की खान है।

५६-- जहा किंपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो॥
(उत्तरा० अ० १६--१७)

जैसे किंपाक फलों का परिणाम अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता।

५७-- चीराजिणं नगिणिणं, जड़ी संघाडि मुंडिणं ।
एयाणि वि न तायन्ति, दुस्सीलं परियागयं ॥
(उत्तरा० अ० ५—२१)

मृगचर्म, नग्नत्व, जटा, संघाटिका, (बौद्ध भिक्षुओं का सा उत्तरीय वस्त्र), और मुण्डन आदि कोई भी धर्म चिन्ह दुःशील भिक्षु की रक्षा नहीं कर सकते।

५८-- संबुज्झह ! किं न बुज्झह ?
संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।
नो हूवणमन्ति राइओ,
नो सुलभं पुणरवि जीवियं ॥
(सूयगडांग अ० ३—१)

समझो, इतना क्यों नहीं समझते ? परलोक में सम्यक् बोधि का प्राप्त होना बड़ा कठिन है। बीती हुई रात्रियाँ कभी लौट कर नहीं आतीं। मनुष्य-जीवन का दोबारा पाना आसान नहीं।

५९- वित्तं पसवो नाइओ, तं बाले सरणं ति मन्नइ ।
एए मम तेसु वि अहं, नो ताणं सरणं न विज्जइ ॥
(सूयगडांग अ० २—१६)

मूर्ख मनुष्य धन, पशु और जातिवालों को अपनी शरण मानता है और समझता है कि—'ये मेरे हैं' और 'मैं

इनका हूँ।' परन्तु इनमें से कोई भी आपत्तिकाल में त्राण तथा शरण का देने वाला नहीं।

६०-- जहेह सीहो व मियं गहाय,
मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले।
न तस्स माया व पिया व भाया,
कालम्मि तस्संसहरा भवन्ति॥
(उत्तरा० अ० १३—२२)

जिस तरह सिंह हिरण को पकड़ कर ले जाता है, उसी तरह अन्त समय मृत्यु भी मनुष्य को उठा ले जाती है। उस समय माता, पिता, भाई आदि कोई भी उसके दुःख में भागीदार नहीं होवे—परलोक में उसके साथ नहीं जाते।

६१-- जे य कन्ते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठी कुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ॥
(दश० अ० २—३)

जो मनुष्य सुन्दर और प्रिय भोगों को पा कर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग कर देता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।

६२-- वत्थगन्धमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजन्ति, न से चाइत्ति वुच्चई॥
(दश० अ० २—२)

जो मनुष्य किसी परतन्त्रता के कारण वस्त्र, गन्ध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।

६३-- जहा कुम्मे सअंगाइं, सए देहे समाहरे ।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥
(सूयगडांग अ० ८—१६)

जैसे कछुआ आपत्ति से बचने के लिए अपने अंगों को अपने शरीर में सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार पण्डित जन भी विषयों की ओर जाती हुई अपनी इन्द्रियों को आध्यात्मिक ज्ञान से सिकोड़ कर रखें ।

६४- अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नन्दनं वणं ॥
(उत्तरा० अ० २०—३६)

अपनी आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी, कूट शाल्मली वृक्ष है, और अपनी आत्मा ही स्वर्ग की कामधुग् धेनु तथा नन्दन वन है ।

६५- अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥
(उत्तरा० अ० २०—३७)

आत्मा ही अपने दुःखों और सुखों का कर्त्ता तथा भोक्ता है । अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना शत्रु है ।

६६- अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ॥
(उत्तरा० अ० १—१५)

अपने आपको ही दमन करना चाहिये । वास्तव में अपने

आप को दमन करना ही कठिन है। अपने आपको दमन करने वाला इस लोक में तथा परलोक में सुखी होता है।

६७– वरं मे अप्पा दन्तो, संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहिं दम्मन्तो, बन्धणेहिं वहेहि य ॥
(उत्तरा० अ० १—१६)

दूसरे लोग मेरा वध, बन्धनादि से दमन करें, इसकी अपेक्षा तो मैं संयम और तप के द्वारा अपने-आप ही अपना (आत्मा का) दमन करूं, यह अच्छा है।

६८– जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥
(उत्तरा० अ० ६—३४)

जो वीर दुर्जय संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतता है, यदि वह एक मात्र अपनी आत्मा को जीत ले, तो यह उसकी सर्वश्रेष्ठ विजय है।

६९– न तं अरी कंठ-छेत्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाहिइ मच्चुमुहं तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥
(उत्तरा० अ० २०—४८)

सिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता, जितना कि दुराचरण में लगी हुई अपनी आत्मा करती है। दया-शून्य दुराचारी को अपने दुराचारों का पहले ध्यान नहीं आता, परन्तु जब वह मृत्यु के मुख में पहुंचता है, तब अपने सब दुराचरणों को याद कर-कर पछताता है।

७०-- सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविश्रो ।
संसारो श्रण्णवो वुत्तो, जं तरन्ति महेसिणो ॥
(उत्तरा० अ० २३—७३)

शरीर को नाव कहा है, जीव को नाविक कहा जाता है, है, और संसार को समुद्र बतलाया है, इसी संसार-समुद्र को महर्षिजन पार करते हैं ।

७१– नाणेण जाणइ भावे, दंसणेणं य सद्दहे ।
चरित्तेण निगण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥८॥
(उत्तरा० अ० २०—३५)

मुमुक्षु आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारित्र से भोग-वासनाओं का निग्रह करता है, और तप से कर्म-मल रहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है ।

७२-- सक्का सहेउं आसाइ कंटया,
अओमया उच्छहया नरेण ।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए,
वईमए कण्णसरे स पुज्जो ॥
(दश० अ० ६ उ० ३—६)

संसार में लोभी मनुष्य के द्वारा किसी--किसी विशेष आशा की पूर्ति के लिए लोह-कंटक भी सहन कर लिये जाते हैं, परन्तु जो बिना किसी आशा-तृष्णा के कानों को तीर के समान चुभने वाले दुर्वचन रूपी कंटकों को सहन करता है, वही पूज्य है ।

७३-- समावयन्ता वयणाभिघाया,
कणणं गया दुम्मणियं जणन्ति ।
धम्मु त्ति किच्चा परमग्गसूरे,
जिइन्दिए जो सहइ स पुज्जो ॥
(दश० अ० ६ उ० ३—८)

विरोधियों की ओर से पड़ने वाली दुर्वचन की चोटें कानों में पहुँचकर बड़ी मर्मान्तिक पीड़ा पैदा करती हैं, परन्तु जो क्षमाशूर जितेन्द्रिय पुरुष उन चोटों को अपना धर्म जान कर समभाव से सहन कर लेता है, वही पूज्य है ।

७४-- गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहू गुण मुञ्चऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥
(दश० अ० ६ उ० ३—११)

गुणों से साधु होता है और अगुणों से असाधु । अतः हे मुमुक्षु ! सद्गुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़ । जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है ।

७५-- जायरूवं जहामट्ठं, निद्धन्तमल-पावगं ।
राग---दोस--भयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥
(उत्तरा० अ० २५—२१)

जो अग्नि में डाल कर शुद्ध किये हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

७६-- कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयइ जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥
(उत्तरा० अ० २५—२४)

जो क्रोध से, हास्य से, लोभ अथवा भय से, किसी भी मलिन संकल्प से असत्य नहीं बोलता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

७७-- न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण ण तावसो ॥
(उत्तरा० अ० २५—३१)

सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता. 'ओम्' का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता, और न कुशा के बने वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी ही हो सकता है।

७८-- समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेण मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥
(उ० अ० २५—३२)

समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है। ज्ञान से मुनि होता है, और तप से तपस्वी बना जाता है।

७९-- कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥
(उत्तरा०, अ० २५—३३)

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है, और शूद्र भी अपने कृत कर्मों से ही होता है। अर्थात् वर्ण-भेद जन्म से नहीं होता। जो जैसा अच्छा या बुरा कार्य करता है, वह वैसा ही ऊँचा नीचा हो जाता है।

८०-- कहं चरे ? कहं चिट्ठे ?, कहमासे ? कहं सए ?
कहं भुंजन्तो भासन्तो, पावं कम्मं न बन्धइ ?॥

(दश० अ० ४—७)

भन्ते ! मानव कैसे चले ? कैसे खड़ा हो ? कैसे बैठे ? कैसे सोये ? कैसे भोजन करे ? कैसे बोले ? जिससे कि पाप कर्म का बन्धन न हो ?

८१-- जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजन्तो भासन्तो, पावं कम्मं न बन्धइ॥

(दश० अ० ४—८)

आयुष्मन् ! मानव विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे, विवेक से सोये, विवेक से भोजन करे, और विवेक से ही बोले, तो पाप-कर्म नहीं बन्ध सकता।

८२-- पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिइ सेय-पावगं॥

(दश० अ० ४—१०)

प्रथम ज्ञान है, पीछे दया। इसी क्रम पर समग्र त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है। भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा ? श्रेय तथा पाप को वह कैसे जान सकेगा ?

८३-- सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥
(दश० अ० ४—११)

सुन कर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है, सुनकर ही पाप का मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुन कर ही जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे ।†

महावीर के सिद्धान्त

भगवान महावीर का संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत पुस्तिका के दूसरे निबन्ध के आरम्भ में कराया जा चुका है। प्रस्तुत में तो हम केवल भगवान महावीर के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का संक्षेप में परिचय कराना चाहते हैं।

कहा जा चुका है कि दीपमाला पर्व के साथ भगवान महावीर का सीधा सम्बन्ध है, और यह भी प्रकट कर दिया गया है कि भगवान महावीर के जीवन के दो पहलू हैं—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। जीवनगत घटना चक्र भगवान के जीवन का बाह्य पहलू है, और भगवान के आन्तरिक जीवन में उन के उपदेशों तथा सिद्धान्तों का विवेचन है। भगवान के उपदेशों का संक्षिप्त विवरण ऊपर दे दिया गया है। आगे की पंक्तियों में भगवान के सिद्धान्तों का संक्षेप में परिचय कराया जाता है।

---

†भगवान महावीर के उपदेशामृत का भाषानुवाद "सस्ता साहित्य मण्डल, देहली" से प्रकाशित "महावीर वाणी" से साभार उद्धृत किया गया है ।

अहिंसा—

भगवान महावीर की अहिंसा सर्वव्यापी अहिंसा थी। भगवान ने किसी एक वर्ग, जाति या किसी एक प्रान्त को लेकर कुछ नहीं कहा, उन्हों ने जो कुछ कहा, वह सर्व-सुखाय और सर्व-हिताय कहा। उन की वाणी में लोकत्रय का हित सन्निहित था। भगवान ने कहा—स्वयं जीओ और दूसरों को भी अपनी ही तरह जीने का अधिकार दो। उन्हों ने डंके की चोट से संसार को संदेश दिया कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम स्वयं दूसरों से अपने लिए चाहते हो। यदि तुम चाहते हो कि मुझे कोई दुःख न दे, परेशान न करे, मेरे मार्ग में दीवाल बन कर कोई खड़ा न हो तो तुम्हें भी किसी को दुःख नहीं देना चाहिए, तुम्हारे द्वारा भी कोई परेशान नहीं होना चाहिए, आत्मवत् सर्वभूतेषु के सत्य को सन्मुख रखकर तुम्हें भी किसी के मार्ग में दीवाल नहीं बन जाना चाहिए। तुम्हारे रोम-रोम से यही ध्वनि निकलनी चाहिए—

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नए मंगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान चरित्र उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें॥

भगवान महावीर की अहिंसा में सत्त्वेषु मैत्री, विश्वप्रेम, उदार विचार और सहिष्णुता आदि सभी गुणों का समावेश हो जाता है, अखण्ड मानवता की उज्ज्वल अनुभूति ही भगवान महावीर स्वामी की अहिंसा की आधार शिला है। केवल प्राणों के विनाश का नाम ही उन्हों ने हिंसा नहीं कहा, प्रत्युत परहृदयमन्दिर को

धराशायी कर देने वाले वचन-कुठारों के प्रहारों तथा दूसरों के प्रति दूषित विचारों को भी भगवान महावीर ने हिंसा कहा है। इन सभी कुवृत्तियों से बचना अहिंसा है। इसी लिए भगवान की अहिंसा सर्वव्यापी अहिंसा थी।

अहिंसा के परिपालक सभी हो सकते हैं। साधु और गृहस्थ दोनों अहिंसा-सरोवर में गोते लगा कर अपने जन्म-जन्म के कर्म-मल को धो सकते हैं। किसी पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है। वैसे गृहस्थ को निरापराधी और निर्दोष प्राणियों की हिंसा से सदा अपने को बचाना चाहिए, और साधु-जीवन के सन्मुख कोई जीवन-शत्रु भी आ जाए तो साधु को उसे भी प्रेम से निहारना चाहिए, स्वप्न में भी उस के अनिष्ट का संकल्प नहीं करना चाहिए। यही अहिंसा का व्यावहारिक रूप है।

अपरिग्रह—

भगवान महावीर ने अपरिग्रह पर उतना ही अधिक जोर दिया है, जितना कि अहिंसा पर। आवश्यकता से अधिक धनादि रखना ही परिग्रह है और यह एक प्रकार का पाप है। परिग्रह का अर्थ है—

परि-समन्तात् मोहबुद्ध्या गृह्यते य स परिग्रहः

अर्थात् मोहबुद्धि के द्वारा जिसे चारों ओर से ग्रहण किया जाता है वह परिग्रह है। परिग्रह इच्छारूप, संग्रहरूप और मूर्च्छारूप इन भेदों से तीन प्रकार का होता है। अनधिकृत साधनसामग्री को पाने की इच्छा करने से इच्छारूप परिग्रह, वर्तमान में मिलती हुई वस्तु को ग्रहण करना संग्रहरूप परिग्रह और संगृहीत वस्तु पर ममत्व भाव और आसक्ति रखना मूर्च्छा-

रूप परिग्रह कहलाता है। परिग्रह के अभाव को अपरिग्रह कहते हैं। अपरिग्रह के भी तीन रूप होते हैं:—

१—इच्छा को सीमित करना यह स्थूल अपरिग्रह है।

२—इच्छा परिमित होते हुए भी अन्याय और अनीति से संग्रह न करना यह भी अपरिग्रह है।

३—न्याय नीति से उपार्जित सम्पत्ति को प्रवचन-प्रभावना के लिए लगाना, राजा प्रदेशी की तरह अरमणीक से रमणीक बनने के लिए अपनी आमदनी का चौथा हिस्सा दान के लिए यथाशक्य निकालना यह भी अपरिग्रह है।

आज परिवारों में असन्तोष, समाज में क्षोभ, प्रान्तों में विप्लव, राष्ट्र में तूफान और विश्व में जो युद्ध-ज्वाला दृष्टिगोचर हो रही है, उसका मूल कारण परिग्रह है। परिग्रह को नष्ट किए बिना और अपरिग्रह की प्रतिष्ठा किए बिना समाज और राष्ट्र में शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती।

समता—

समता भगवान महावीर की असाधारण देन है। समभाव का नाम समता है। वैयक्तिक और सामाजिक स्वतंत्रता, ही समता की नींव है। व्यक्तिगत और समाजगत उद्दण्डता और उच्छृंखलता का समता से कभी मेल नहीं हो सकता। भगवान महावीर का कहना था कि धर्म के नाम पर, शास्त्र के नाम पर और संस्कृति के नाम पर मानव-मानव के बीच में भेद-भित्ति खड़ा कर देना उचित नहीं है। सभी मानव समान है। समता के ही महाप्रकाश में भगवान महावीर ने नारी को संसार की मातृशक्ति के रूप में देखा था। भगवान महावीर ने कहा था—नारी को धार्मिक अधिकारों से वञ्चित रखना एक

आध्यात्मिक और सामाजिक पाप है। अध्यात्म नारी मनुष्य का आदि गुरु है, जिसकी शिक्षा-सीढ़ियों से मानव का शशव सदा विकास के डण्डे पार करता आया है।

भगवान महावीर की प्रवचन सभा को आगमों की भाषा में समवसरण कहा जाता है, उसमें किसी भी प्रकार की असमानता या विषमता नहीं होती थी। वहां ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं था, अमीर-ग़रीब पर एक समान समता की वृष्टि होती थी। सबके साथ भ्रातृभाव का व्यवहार चलता था। मनुष्य तो क्या हिंसक पशु भी अपनी हिंसक भावना भूल कर प्रेम-सरोवर में डूबने लगते थे। भगवान के समवसरण में समता ही समता दृष्टि-गोचर होती थी। क्यों न हो, समता के दिवाकर भगवान महावीर के पास विषमता का अन्धकार कैसे टिक सकता था?

अनेकान्तवाद—

संसार में दो तरह के व्यक्ति पाए जाते हैं। एक ऐसा है जो कहता है कि जो मेरा है, वह सत्य है। उस का विचार है कि मेरी बात कभी ग़ल्त नहीं हो सकती, मैं जो कहता हूँ, वह सवा सोलह आने सत्य है और जो दूसरा कहता है वह सर्वथा झूठ है, ग़ल्त है। दूसरे व्यक्ति का विश्वास है कि जो सत्य है, वह मेरा है। उस की धारणा है कि मुझे अपनी बात का कोई आग्रह नहीं है। मैं तो सत्य का पुजारी हूं, मुझे सत्य चाहिए। मैं किसी को झूठा नहीं कहता और 'जो मेरा है वही सत्य है' ऐसा भी मैं नहीं कहता। मैं तो 'जो सत्य है वह मेरा है' ऐसा मानता हूं और वह सत्य जहां कहीं से भी प्राप्त हो जाए वहीं से लेने को तैयार हूँ। भगवान महावीर की दृष्टि में पहला एकान्त-वादी है और दूसरा अनेकान्त वादी।

वस्तु के अनेक धर्मों का जो समवन्य करता है, उसी तथ्य का नाम अनेकान्तवाद है। अनेकान्तवाद प्रत्येक व्यक्ति को वस्तु के सभी धर्मों को समझ लेने की बात कहता है। अनेकान्तवाद के इस सन्देश से भारत के दार्शनिकों ने बहुत कम लाभ उठाया है। इसी कारण विश्व में विविध धर्मों, दर्शनों, मतों, पन्थों और सम्प्रदायों में बिवाद चल रहे हैं। एक धर्म दूसरे धर्म को असत्य और मिथ्या कहता है, वह अपने द्वारा माने हुए धर्म को ही सम्पूर्ण सत्य मान बैठा है। यदि अनेकान्तवाद को अपना लिया जाय तो परिवार, समाज और राष्ट्र में शान्ति की स्थापना हो सकती है। अनेकान्तवाद में कभी विचारों का दुराग्रह नहीं होता। वह शान्ति से सब की सुनता है और जहां कहीं भी उसे सत्यांश मिलता है वहीं से उसे ग्रहण कर लेता है। हठवाद और अनेकान्तवाद का दिन रात का सा विरोध है।

स्याद्वाद के इस अमर सिद्धान्त को दार्शनिक संसार ने बड़ा मान दिया है। राष्ट्रपिता गान्धी जैसे युगपुरुषों ने भी इस की महान प्रशंसा की है। पाश्चात्य विद्वान डाक्टर थामस ने भी कहा है कि अनेकान्तवाद का सिद्धान्त बड़ा ही गंभीर है, यह वस्तु की भिन्न-भिन्न स्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।

कर्मवाद—

भगवान महावीर के सिद्धान्तों में कर्मवाद का अपना एक रहस्यपूर्ण स्थान है। कर्मवाद के मर्म को समझे बिना जैनधर्म और जैन संस्कृति के मूल हार्द का ज्ञान नहीं हो सकता। जैन धर्म का भव्य प्रासाद कर्मवाद की गहरी और मजबूत नींव पर ही टिका हुआ है। कर्मवाद की धारणा है कि जीव स्वयं

कर्म करता है, उस के फल को स्वयं भोग लेता है। कर्मफ भुगतान में किसी भी प्रकार की हेराफेरी नहीं हो सकती। राजा हो या रंक, ज्ञानी हो या अज्ञानी, धनी हो या निर्धन, मूर्ख हो या विद्वान, योगी हो या भोगी, कोई भी क्यों न हो, कर्म बराबर सब को अपना फल देता, किसी को छोड़ता नहीं, कर्मराज के शासन में ऊंच-नीच का कोई प्रश्न नहीं, वहां वर्ण या जाति गत भिन्नता का भी कोई महत्त्व नहीं। कर्म का सुदर्शनचक्र हर जीव पर बराबर चलता रहता है।

कर्म जड़ शक्ति का नाम है, यह चेतना शक्ति को ऐसे ही घेरे रहती है। जैसे मदिरा पीने वाले को मदिरा मोहित बनाए रखती है। गौ का बछड़ा जैसे अपनी मां के पीछे जाता है, ठीक वैसे ही कर्म भी आत्मा के पीछे-पीछे रहता है। दुनिया में कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां छिपकर मनुष्य अपने पाप कर्मों से बच सके। इस के अतिरिक्त मानव-जीवन में अमावस की रात्रि कर्मों के प्रभाव से ही आती है और पूर्णिमा की घड़ी कर्मों को दूर करने पर ही उपलब्ध होती है। कितनी विचित्र बात है कि मनुष्य हजारों माइल दूर के सूर्य को केतु से मुक्त करने के लिए दान पुण्य करता है किन्तु अनन्त सूर्यों के सूर्य अपने आत्मदेव को कर्मों के केतु से मुक्त कराने का इसे कभी विचार ही नहीं आता।

भगवान महावीर का कहना है कि ईश्वर और जीव में केवल कर्मों का ही परदा पड़ा हुआ है जो एक दूसरे को एक दूसरे से अलग रख रहा है। वेदान्त इस परदे को माया या अविद्या कहता है। इसके हट जाने पर जीव में और ईश्वर में कोई भेद नहीं रहता है! तभी तो कहा है—

आत्मा परमात्मा में, कर्म ही का भेद है।
काट दे गर कर्म को, फिर भेद है ना खेद है॥

कर्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। ईश्वर का उस से कोई सम्बन्ध नहीं। मनुष्य के एक हाथ में स्वर्ग है और एक में नरक। वह शुभ कर्म से स्वर्ग और अशुभ कर्म से नरक को प्राप्त होता है। जो चाहे वह कर सकता है। परमात्मा भी इसके मार्ग में बाधक नहीं बन सकता। कर्मवाद तो कहता है कि हर आत्मा योग्य साधन मिलने पर परमात्मा बन सकता है।

वीर-स्तुति

[आरती]

ध्वनि—जय जगदीश हरे !......

जय महावीर प्रभो !, स्वामी जय महावीर प्रभो !
जगनायक सुखदायक, अति गम्भीर प्रभो ! ॐ जय···

कुण्डलपुर में जन्में, त्रिशला के जाए ।
पिता सिद्धार्थ राजा, सुर नर हर्षाए, ॐ जय...

दीनानाथ दयानिधि, हैं मंगलकारी ।
जगहित संयम धारा, प्रभु पर-उपकारी, ॐ जय···

पापाचार मिटाया, सत्पथ दिखलाया ।
दयाधर्म का झण्डा, जग में लहराया, ॐ जय···

अर्जुनमाली गौतम, श्री चन्दनबाला ।
पार जगत से बेड़ा, इन का कर डाला, ॐ जय...

पावन नाम तुम्हारा, जगतारणहारा ।
निशदिन जो नर ध्यावे, कष्ट मिटे सारा, ॐ जय···

करुणासागर ! तेरी, महिमा है न्यारी ।
ज्ञानमुनी गुण गावे, चरणन बलिहारी, ॐ जय···

शास्त्रमाला के अन्य प्रकाशन

उत्तराध्ययन सूत्र भाग १	७–०
,, ,, भाग २	८–०
,, ,, भाग ३	६–०
दशवैकालिक सूत्र	१०–०
विपाक सूत्र	६–०
अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र	४–०
अनुयोगद्वार सूत्र	२–८
तत्त्वार्थसूत्र (अर्थ सहित)	२-८
(जैनागमसमन्वय) गुटका	१–४
भगवान महावीर और मांसाहार	स्वाध्याय
जैनागमों में अष्टांगयोग	०–८
जैनागमों में स्याद्वाद (दो भाग)	२–०
जैनागम-न्यायसंग्रह	१–४
जीवशब्द संवाद	०–४
भावना योग	१२–०
विभक्ति संवाद	०–१०
आस्तिक नास्तिक समीक्षा	०–३
वीर त्थुई (प्राकृत)	०–४
आचार्य सम्राट्	०–८
संवत्सरीपर्व क्यों और कैसे?	०–२
भगवान महावीर और विश्व शान्ति (हिन्दी)	०–२
नित्य नियम (बड़ा)	०–५
नित्य नियम (छोटा)	०–२
भगवान महावीर एण्ड यूनिवर्सल पीस (अंग्रेजी)	०–३
ज्ञानगंगा (भजन संग्रह)	०–२
भगवान महावीर और विश्वशान्ति (ऊर्दू)	०–२
आत्मदर्शन (श्रावक प्रतिक्रमण)	०–५
मंगल पाठ	स्वाध्याय

मिलने का पता :—

श्री जैनशास्त्रमाला कार्यालय

जैनस्थानक, लुधियाना (पंजाब)